उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत
उठो, जागो और लक्ष्य प्राप्त किए बिना विश्राम मत लो

विवेक शिखा

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा की एकमात्र हिन्दी मासिकी

वर्ष—२ जनवरी १९८३ अंक—१

इष्टदेव का हृदय-कमल में रूप अनूप दिखा। निजानन्द में रखती अविचल विमल 'विवेक शिखा'॥

संपादक

डॉ० केदारनाथ लाभ

संपादकीय कार्यालय :

रामकृष्ण निलयम्

जयप्रकाश नगर,

छपरा—८४१३०१

(बिहार)

सहयोग राशि

षड् वार्षिक	१०० रु०
त्रैवार्षिक	५० रु०
वार्षिक	२० रु०
एक प्रति	२ रु०

रचनाएँ एवं सहयोग राशि संपादकीय कार्यालय के पते पर ही भेजने की कृपा करें।

श्री रामकृष्ण ने कहा है

१. जो लोग ईश्वर प्राप्ति के लिए साधन-भजन करने की इच्छा रखते हों, उन्हें चाहिए कि कामिनी-कांचन के मोह में किसी प्रकार न फँसें, क्योंकि यदि इनका संसर्ग रहा, तो सिद्धावस्था लाभ करने की कभी सम्भावना नहीं। लाई भूनते समय जो लाई मटके से चटख कर बाहर गिर जाती है, उसमें किसी प्रकार का दाग नहीं लगता, परन्तु जो उस मटके के गरम रेत में रहती है, उसमें किसी न किसी स्थान पर काला दाग अवश्य लग जाता है।

२. रत्नाकर (समुद्र) में अनेक रत्न हैं, पर तुमको यदि एक ही डुबकी में रत्न न मिले, तो रत्नाकर को रत्न से रहित मत समझो। इसी प्रकार यदि थोड़ी साधना करने से ईश्वर के दर्शन न हों तो निराश नहीं होना चाहिए, धैर्य धरकर साधना करते रहो, कभी न कभी ईश्वर की कृपा अवश्य होगी।

३. कागज में यदि तेल लगा हो, तो उस पर लिखा नहीं जा सकता, उसी प्रकार जीव में जब कामिनी-कांचन रूपी तेल लग जाता है तो उसके द्वारा साधना नहीं हो सकती फिर जिस प्रकार उस तेल लगे हुए कागज को खड़िये से घिसने पर उस पर लिखा जा सकता है, उसी प्रकार कामिनी-कांचन रूपी तेल लगे हुए मन को यदि त्याग रूपी खड़िये से घिस कर शुद्ध किया जाय, तो साधना की जा सकती है।

पाठकों के पत्र

(१)

'विवेक शिखा' विगत कई महीनों से नियमित रूप से प्राप्त हो रही है। श्री रामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा द्वारा अनुप्राणित ऐसी सुपाठ्य पत्रिका के प्रकाशन के लिए आप धन्यवाद के पात्र हैं। श्री प्रभु के चरण-कमलों में प्रार्थना है कि पत्रिका उत्तरोत्तर वृद्धि को प्राप्त हो। शुभेच्छाओं सहित—

भवदीय
स्वामी निखिलात्मानन्द
रामकृष्ण मिशन बालकाश्रम
रहड़ा (पश्चिम बंगाल)

(२)

पिछली फरवरी से अगस्त तक के 'विवेक शिखा' के सारे अंक मिले। उन्हें पढ़ने पर प्रतीत हुआ कि सभी रचनाएँ सबके लिए प्रशान्ति और प्रेरणा प्रदान करने योग्य तथा आध्यात्मिक साधकों के लिए सुन्दर पथ-निर्देश करने वाली हैं। पत्रिका का आकार और मुद्रण उत्तम है। आवरण पृष्ठ के चित्र को कुछ और साफ और स्पष्ट करना आवश्यक है। मैं अपने पड़ोसियों और सहेलियों को इसका ग्राहक बनाने की चेष्टा कर रही हूँ।

(श्रीमती) चन्द्रा जोशी
द्वारा, श्री बी० एन० जोशी, हवलबाग, जि० अल्मोड़ा (उत्तर प्रदेश)

(३)

आपकी पत्रिका और आप हमारे लिए सिर्फ इसलिए धन्यवाद के पात्र नहीं हैं कि आप मुझे स्तरीय बौद्धिक और आत्मिक आनन्द प्रदान करते हैं, बल्कि अपने प्रशंसनीय कार्य के द्वारा आपने मुझे एक नयी जीवन-शैली दी है जिसे मैं जीवन भर नहीं भूलूँगा।

हरेराम पाण्डेय
पंचम वर्ष, (भूगोल)
पटना विश्वविद्यालय, पटना।

(४)

कम उम्र से ही आपने बहुत अच्छे काम शुरू कर दिये हैं। सत्तर साल का बूढ़ा मैं आपको आपकी पूर्ण सफलता के लिए अपनी मंगल कामना भेजता हूँ।

आचार्य डा० उमेश चन्द्र मधुकर
सत्संग भवन, राजेन्द्र नगर, पटना।

(५)

कुछ दिन हुए मैंने रामकृष्ण मिशन, बिस्टूपुर (जमशेदपुर) के पुस्तकालय में आपकी मासिक पत्रिका 'विवेक शिखा' देखी। कुछ ही अध्ययन करने के बाद मैंने अनुभव किया कि यह पत्रिका मैं मँगाऊँ। यह पत्रिका देखकर मुझे कितनी खुशी हुई है यह मैं लिख नहीं सकता। बड़ा अच्छा यह कार्य आपने किया है। माँ आपको शक्ति दे इसी कामना के साथ—

पी० एन० मिश्र
नार्दर्न टाउन, जमशेदपुर—१

सारदादेवी ध्यानम्

— स्वामी अभेदानन्द

ध्यायेच्चित्तसरोजस्थां सुखासीनां कृपामयीम् ।
प्रसन्नवदनां देवीं द्विभुजां स्थिरलोचनाम् ॥१
आलुलायितकेशार्धवक्षः स्थल विमंडिताम् ।
श्वेतवस्त्रावृतार्धाङ्गीं हेमालंकारभूषिताम् ॥२
स्वक्रोडन्यस्तहस्तां च ज्ञानभक्तिप्रदायिनीम् ।
शुभ्रां ज्योतिर्मयीं जीवपापसंतापहारिणीम् ॥३
रामकृष्णगतप्राणां तन्नामश्रवणप्रियाम् ।
तद्भावरंजिताकारां जगन्मातृस्वरूपिणीम् ॥४
जानकीराधिकारूपधारिणीं सर्वमंगलाम् ।
चिन्मयीं वरदां नित्यां सारदां मोक्षदायिनीम् ॥५

भावार्थ—मैं अपने हृदय-कमल पर सुखासन में स्थित, कृपामयी, प्रसन्न-मुख, दो भुजाओं से युक्त, स्थिर नेत्रोंवाली भगवती देवी सारदा का ध्यान करता हूँ ॥१

उन देवी का हृदय-स्थल बिखरे हुए आधे बाल-जाल से विमंडित है। उजले वस्त्र से उनका आधा शरीर आवृत है और वे सोने के आभूषण से विभूषित हैं ॥२

अपनी गोद में हाथों को वे रखे हुई हैं तथा ज्ञान और भक्ति प्रदान करनेवाली हैं। वे परम कान्तियुक्त, ज्योतिर्मयी हैं तथा जीवों के पाप-संताप को हरनेवाली हैं ॥३

उनके प्राण भगवान् श्री रामकृष्ण में लगे हैं तथा उनका नाम-श्रवण करना उन्हें प्रिय लगता है। उनकी पूरी आकृति श्री रामकृष्ण के भावों से रंगी हुई है और वे संसार की माँ स्वरूपिणी हैं ॥४

भगवती सीता और राधा का रूप धारण करनेवाली वे सबके लिए कल्याणकारिणी हैं। वे भगवती सारदा चिन्मयी हैं, वरदायिनी हैं, नित्य हैं और संसार के प्राणियों को मोक्ष प्रदान करनेवाली हैं ॥५

पवित्र होना और दूसरों का हित करना—सभी उपासनाओं का यही सार है। जो दरिद्रों में, दुर्बलों में और रोगियों में शिव को देखता है, वही शिव की सच्ची पूजा करता है, और यदि वह केवल प्रतिमा में शिव को देखता है तब उसकी पूजा मात्र प्रारंभिक है।

— स्वामी विवेकानन्द

This is the gist of all worship—to be pure and to do good to others. He who sees Siva in the poor, in the weak; and in the diseased, really worships. Siva; and if he sees Siva only in the image, his worship is but preliminary.

SWAMI VIVEKANANDA

सम्पादकीय सम्बोधन

माता न कुमाता हो सकती

मेरे आत्मस्वरूप मित्रो,

'विवेक शिखा' इस अंक के साथ ही अपनी जीवन-यात्रा का एक वर्ष पूरा कर दूसरे वर्ष में प्रवेश कर रही है। अपने जन्म के प्रथम वर्ष में ही इसने जिस प्रकार आप सबका ध्यान अपनी ओर आकृष्ट किया, वह उत्साह वर्द्धक होने के साथ ही इस तथ्य का सूचक भी है कि हिन्दी भाषी क्षेत्र की धर्म-प्रवण जनता श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा से घनिष्ठ रूप में परिचित होने की तीव्र आकांक्षा रखती है ।

सांसारिक जीवन की ज्वाला से तप्त और अज्ञान के अंधकार में अपने लक्ष्य की तलाश करती भटकती भटकती पूरी मानवता को ही श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा एक शीतल-स्निग्ध आलोक प्रदान करने में सहायक सिद्ध हो सकेगी, ऐसी आशा की जा सकती है, की जाती है। हम इस दिशा में लघु प्रयास कर रहे हैं; इस प्रार्थना के साथ भगवान श्रीरामकृष्ण अपनी कृपा और बल इस कार्य के लिए हमें प्रदान करते रहें।

गत वर्ष 'विवेक दीप' था प्रवेशांक या स्वामी विवेकानन्द-अंक। इस वर्ष का प्रथम अंक प्रस्तुत कर रहें हैं सारदा-अंक के रूप में। स्वामी विवेकानन्द ही नहीं श्री रामकृष्ण के सारे शिष्य और भक्त, सही अर्थ में, श्री माँ की ही सन्तान थे और हैं। और सन्तान की सारी साधनाएं ससीम लौकिक माता से उत्पन्न होने पर असीम अलौकिक जगन्माता को उपलब्ध कर लेने के लिए ही होती है, होनी चाहिए। और माँ सारदा देह धारण कर भी चिरन्तन चिन्मयी सत्ता थीं। जगन्माता अर्थात् सबके लिए समान मंगल-भाव रखनेवाली, परम करुणामयी, परम सन्तान-वत्सला और कल्मष रहित, हिम-धवल पवित्रता की ज्योतिर्मयी प्रतिमूर्ति। भगवान श्रीकृष्ण का कथन है—

> लभन्ते ब्रह्मनिर्वाणमृषयः क्षीणकल्मषाः।
> छिन्नद्वैधा यतात्मानः सर्वभूतहिते रताः ॥
>
> (गीता) ५ २५

अर्थात् जो निष्पाप, निःसंशय, अपनी आत्मा में समाहित-एकाग्र चित्त से अवस्थित और सभी जीवों के कल्याण में नित्य निरत रहते हैं, वे परम ब्रह्म को प्राप्त करते हैं।

परम ब्रह्म को प्राप्त करने वाला स्वयं ब्रह्म हो जाता है। माँ में गीतोक्त उपर्युक्त सारे गुण थे। स्वभावतः वे स्वयं परम ब्रह्म, चिन्मयी सत्ता, जगन्माता थी। स्वयं श्रीरामकृष्ण भी उन्हें इसी दृष्टि से देखते थे। स्वामी सारदानन्द ने श्रीरामकृष्ण–लीलामृत में लिखा है—"एक दिन उनके पैर दबाते दबाते माता जी (श्री माँ सारदा) ने उनसे एकाएक पूछा,,मुझको आप कौन समझते हैं?" श्रीरामकृष्ण बोले, "जो माता उस काली मन्दिर में है, ...वही यहाँ पर इस समय मेरे पैर दबा रही है। तू मुझे, सचमुच ही, सदा साक्षात् आनन्दमयी के रूप में दिखाई देती है।" भगिनी निवेदिता ने ईसा-मसीह की माता मेरी में माँ सारदा की प्रतिछवि पायी थी। उन्होंने कैंब्रिज से ११ दिसम्बर १९१० ई० को श्री माँ के नाम प्रेषित एक पत्र में लिखा था—"प्रिय माँ, आज उषाकाल में सारा के लिए प्रार्थना करने चर्च गयी थी। वहाँ सभी लोग ईसा मसीह की माता मेरी का ध्यान कर रहे थे, और सहसा मेरा ध्यान आप पर चला गया। आपका प्रिय मुखमंडल, और आपकी प्रेमिल दृष्टि और आपकी श्वेत साड़ी और आपकी चूड़ियाँ। ये सारी वस्तुएं वहाँ थीं। और मुझे ऐसा अनुभव हुआ कि यह आपकी उपस्थिति थी जो बहन सारा को उसके रुग्ण-गृह में आह्लाद और आशीष प्रदान करने वाली थी। और—क्या आप जानती हैं?—मैंने सोचा, मैं कैसी महा-मूर्खा थी कि श्रीरामकृष्ण की संध्या आरती के समय आपके कक्ष में बैठकर ध्यान करने की चेष्टा किया करती थी। मैंने यह क्यों नहीं समझा कि आपके चरणों के तले एक छोटी बच्ची बनका बैठना ही काफी था।"

माँ स्वयं अपनी उस दिव्य, सर्वमंगला परमा शक्ति से परिचित थीं। उन्होंने एक बार कहा था—'जिसे मेरा आशीर्वाद मिल गया है उसे अपनी अंतिम मुक्ति के लिए चिन्ता नहीं करनी चाहिए।' वस्तुतः यदि भगवान् श्री रामकृष्ण राम और कृष्ण के सम्मिलित अवतार थे तो माँ सारदा जगन्माता सीता और राधा की सम्मिलित अवतार थीं जो श्री रामकृष्ण की लीलासहधर्मिणी बनकर उनकी शक्ति के रूप में प्रकट हुई थीं। इसी से स्वामी अभेदानन्द ने माँ सारदा के प्रति निवेदित अपने प्रणाम मंत्र में कहा है—

यथाग्नेर्दाहिकाशक्ति रामकृष्णे स्थिता हि या।
सर्वविद्यास्वरूपां तां सारदां प्रणमाम्यहम् ॥

अर्थात्, जैसे आग में उसकी दाहिका शक्ति सतत स्थित रहती है उसी प्रकार जो श्री रामकृष्ण में नित्य स्थित हैं उन समस्त विद्याओं की स्वरूपिणी माँ सारदा को मैं प्रणाम करता हूँ।' माँ स्वयं कहती थीं—मैं और ठाकुर (श्रीरामकृष्ण) एक हैं।'

भगवान् रामकृष्ण तो अपने से बढ़कर सारदा देवी को महत्व देते थे। एक बार उन्होंने युवक सारदा को जो बाद में स्वामी त्रिगुणातीतानन्द के नाम से अभिहित हुए माँ सारदा के पास दीक्षा-ग्रहण करने एक पत्र के साथ भेजा था जिसमें एक वैष्णव पद उन्होंने उद्धृत किया था जिसका आशय है—'राधा श्रीकृष्ण से कई गुणा अधिक शक्तिशालिनी हैं।'

और श्री माँ की अकलुषता, निष्पापता और परम पावनता के विषय में क्या कहा जाय! एक बार स्वयं श्री माँ ने प्रभु से प्रार्थना की थी—'चंद्रमा में भी थोड़ा कलंक है, तू मुझे पूर्णतः निष्कलंक बना दे।' और वे वैसी ही हो गयीं। उनकी निष्कामता और पवित्रता की ओर लक्ष्य कर एक बार स्वयं श्री रामकृष्ण ने कहा—"वही (श्री सारदा देवी) यदि इतनी शुद्ध और पवित्र न होती और कामासक्ति से विवेकहीन बन जाती तो हमारे संयम का बाँध टूटकर मन में देह-बुद्धि का उदय हो जाता या नहीं, यह कौन कह सकता है?"

माँ सर्वांशतः माँ थीं। जैसे कोई भी माँ अपने किसी बच्चे में कोई दोष नहीं देख सकती उसी भाँति वे भी किसी में कोई दोष नहीं देखना चाहती थीं। एक बार वृन्दावन में राधारमण के मंदिर में उन्होंने प्रार्थना की थी कि उनकी आँखें किसी का दोष-दर्शन नहीं कर सकें। उनकी प्रार्थना सुनी गयी। उन्होंने दोष दर्शन करना छोड़ दिया। स्वभावतः वे चाहती थीं कि उनकी संतान भी, उनके बच्चे भी—और हम सब उनके बच्चे ही तो हैं—निर्दोष हो जायँ, निष्कलंक हो जायँ। निर्दोष होने के लिए आवश्यक है, हम दूसरों का दोष-दर्शन करना छोड़ दें। आखिर हम कौन हैं किसी का दोष देखने वाले! माँ सबसे कहा करती थीं—'दूसरों का दोष नहीं देखो, क्योंकि इससे अपनी ही आँखें दूषित हो जाती हैं, और मनुष्य दूसरों का दोष अपने भीतर ले आता है।' अपने देहावसान से पाँच दिन पहले अपने सामने आयी भक्त महिलाओं से उन्होंने कहा था—'माँ यदि शान्ति चाहती हो तो किसी का दोष मत देखो। दोष देखना हो तो अपना ही देखो। संसार को अपना बना लेना सीखो। कोई दूसरा नहीं है माँ, संसार तुम्हारा है।' यही था उनका अंतिम उपदेश अपनी समस्त संतानों के लिए, सम्पूर्ण मानव-जाति के लिए।

माँ अपनी संततियों के लिए अनंत ममतामयी थीं। वे कहा करती थीं 'अगर मेरा बच्चा धूल में सना है तब भी वह मेरा बच्चा है।....मैं भलों की भी माँ हूँ और बुरों की भी माँ हूँ।' एक बार एक वक्र स्वभाव की महिला जो बाद में मधुर भाव की साधना करने लगी थी, दक्षिणेश्वर आयी। एक दिन उसने कहा कि श्रीरामकृष्ण को वह पति भाव से देखना चाहती हैं। श्रीरामकृष्ण यह सुनकर इतने क्रुद्ध हो गये कि हंगामा हो गया। माँ ने यह सुनकर उस महिला को अपने पास बुलवा लिया और बड़े प्यार से अपनी बेटी की तरह कहा—'अगर वे तुम्हारी उपस्थिति से झल्ला उठते हैं तो उनके समीप मत जाओ। बस मेरे पास आ जाया करो।' कैसी अद्भुत करुणा, कैसी अपार ममता है यह!

अपनी जवानी के दिनों की एक दुश्चरित्र महिला श्री माँ के पास आया करती थी। ठाकुर ने माँ को उससे मिलने से रोका। लेकिन एक माँ अपनी बेटी चाहे वह

कैसी भी बुरी क्यों न हो, अपनी माँ से मिलने से कैसे रोक सकती है ? अतः माँ ने ठाकुर की बात नहीं मानी और उस महिला से मिलती रहीं। बाद में श्री माँ का भाव जानकर ठाकुर ने मिलने से उन्हें नहीं रोका।

एक बार श्री माँ ठाकुर के लिए भोजन लिए जा रही थीं। एक मंद चरित्र की महिला ने थाल ले जाने में माँ की मदद की। ठाकुर खाने बैठे तो हाथ ही नहीं उठा। उन्होंने टोका—'तुमने थाली किससे छुला दी ! देखो तो खाया नहीं जाता है ! कहो, अब से तो ऐसा नहीं करोगी ?' माँ ने कहा—'नहीं, मैं ऐसा वादा नहीं कर सकती। जब भी कोई मुझे माँ कह कर सम्बोधित करता है, मैं उसके सारे दुर्गुण भूल जाती हूँ। आप यत्न कर थोड़ा खा लें।'

इसी भाँति एक बार बाबूराम (स्वामी प्रेमानन्द) ने पाँच-छः रोटियाँ खा ली थी। श्री रामकृष्ण के पूछने पर उन्होंने कहा कि माँ ने इतनी रोटियाँ उन्हें खिला दी थी। श्री रामकृष्ण ने अधिक खाने से आध्यात्मिक साधना में बाधा होने की आशंका से माँ से जाकर आवेश में कहा—'क्या तुम इन बच्चों की सारी साधनाएँ चौपट कर दोगी ? क्यों इतना खिला दिया ?' माँ—ममतामयी माँ—ने शान्त भाव से उत्तर दिया—आपको इन बच्चों के लिए चिन्ता नहीं करनी है। मैं संभाल लूँगी इन्हें।' माँ की आध्यात्मिक शक्ति का अनुमान कर ठाकुर चुपचाप लौट आये। यह है मातृत्व यह है संतान वत्सलता। समस्त संततियों के लिए मातृत्व की इस करूणा पूर्ण गंगा धारा अपने हृदय आँचल से प्रवाहित कर माँ स्वयं पार्वती बन गयी थीं।

ऐसी कितनी ही कथाएँ हैं, माँ की अपनी संततियों के प्रति ममता और करूणा की। एक कविता की पंक्तियाँ हैं—

माता न कुमाता हो सकती, हों पुत्र कुपुत्र भले कठोर
सब देव देवियाँ एक ओर, ऐ माँ मेरी तू एक ओर !

मेरी आंततिक प्रार्थना है कि ऐसी करूपामयी, ममतामयी सर्वमंगला माँ सारदा हम पर अपनी अनंत अहेतुकी करुणा और कृपा उड़ेलकर हमारी सर्वविध मंगल करती रहें।

निरञ्जन पवित्रता

—श्रीमत स्वामी अनन्यानन्दजी महाराज
अध्यक्ष, अद्वैत आश्रम, मायावती, (हिमालय)

"अपने विशुद्ध रूप में मातृत्व उस स्नेह-उत्कंठित प्रेम से संपन्न है जो हमें कभी नहीं अस्वीकार सकता, एक जीवंत आशीष से जो सदैव हममें निवास करता है, एक ऐसी उपस्थिति से जिससे हम बिछुड़ नहीं सकते, एक ऐसे हृदय से जिसमें हम सदैव सुरक्षित रहते हैं—अथाह माधुर्य, अटूट संबंध, निरञ्जन पवित्रता"—इन शब्दों में भगिनी निवेदिता ने अर्पित की है अपनी विनम्र श्रद्धांजलि श्रीसारदा देवी, श्री माँ को, जो श्रीरामकृष्ण की लीलासहधर्मिणी थीं। यद्यपि उनका जीवन और दैनंदिन एक तरह से शांत और घटनाशून्य लगता है किन्तु ध्यान देने से स्पष्ट होगा कि भगिनी निवेदिता द्वारा रेखांकित किये गये दिव्य प्रसाद गुण विपुल ऊर्जा से स्पंदित होकर उनके जीवन में क्रियमाण थे। वह प्रत्येक और सबके लिए माँ थीं, चाहे वह धनी हो या दरिद्र, राजकुमार हो या किसान, पंडित हो या निरक्षर अथवा संभ्रांत हो या पतित। उनके अलौकिक जीवन में

परिच्छिन्नता या भेद-भाव की गंध भी नहीं थी। उनकी मातृत्वसंपन्न बाँहों के सर्वाश्लेषी आलिंगन में वर्ण, संप्रदाय, जाति या लिंग के कारण किसी प्रकार का विभेद नहीं था। वह परम मातृत्वमयी, पूर्ण जननीस्वरूपा थीं।

मध्ययुग के किसी रहस्यवादी ने कहा है कि फूलों की मधुर सुगंध तो हवा की गति के सहारे तैरती है, किन्तु संत-सत्पुरुष की आत्मोत्थापक सुगंध, उनकी पवित्रता, दिव्यता और आध्यात्मिक महिमा हवा के विरुद्ध भी प्रवाहित होती है। वह विभु, व्यापक और अत्यंत प्रभावशाली होती है। समाज और नैतिकता की दृष्टि में पतित एवं हृदयहीन प्राणियों को भी झकझोर कर उन्हें पुनः संवेदनशील बना देती है। इस प्रकार की ईश्वरीय महिमा का प्रभाव बहुत गहरा और दूरगामी होता है। वह पतित एवं पापियों की अधोगामी, सहज प्रवृत्तियों को भी रूपांतरित करता है। संतों की महिमा से पतितों के जीवन की दिशा बदल जाती है उनकी जीवन-विद्या और उनके क्रिया-कलाप भी उच्चतर लक्ष्य की ओर निर्देशित हो जाते हैं। उनकी चेतना का ऐसा दिव्य उत्क्रमण घटित होता है कि वे ईश्वर-लाभ के समर्थ हो जाते हैं, उन्हीं में जीते-रहते और अनंत-नित्य जीवन को उपलब्ध होते हैं। पूर्ण पवित्रता, निर्विकारता एवं साधुता से गठित अपने निरञ्जन चरित्र के द्वारा श्री सारदा देवी ने यह प्रमाणित किया कि वे उक्त प्रकार का ही असाधारण प्रभाव-केन्द्र थी। श्री रामकृष्ण के भक्तों ने भगवती माता का प्राकट्य मानकर उन्हें श्रद्धा-भक्ति से अपनाया और वे परम प्रेमस्वरूपा माँ सारदा के रूप में सर्वविदित हो गयीं। उनके जीवन में नैतिक विभूतियों और ईश्वरीय लक्षणों का इस हद तक समन्वय हुआ था कि वे भारतीय नारीत्व के आदर्श की जीवंत मूर्ति और उसके शीर्षस्थ महिमा-किरीट की तरह अद्वितीय हो गयीं। पुनः भगिनी निवेदिता के शब्दों में। "मुझे तो सदैव प्रतीत हुआ है कि माँ सारदा भारतीय नारी के आदर्श-रूप में श्री रामकृष्ण की अंतिम प्रस्तुति हैं, परम शब्द हैं। उनमें हम जिस विवेक-ज्ञान और मधुरता की सिद्धि देखते हैं, उसे सरलतम नारी भी प्राप्त कर सकती है। किन्तु मेरे लिए उनकी साधुता की तरह उनके शील का ऐश्वर्य और उनका परम उन्मुक्त मन भी उतना ही आश्चर्य जनक है।"

एक तरह से श्री सारदा देवी का जीवन बहुत सामान्य लगता है, जिसके संबंध में कुछ भी असाधारण नहीं कहा जा सकता। किन्तु अध्ययन करने से उनके जीवन की दो प्रमुख विभूतियाँ ज्वलंत होकर सामने आती हैं। एक तो है उनकी निर्विकार पवित्रता का स्पष्ट एवं ज्वलंत चित्र—निरंजन पवित्रता जो वह स्वयं थी: और दूसरी विभूति है उनकी मातृसुलभ स्नेहमयता तथा उत्कंठित शुभाशंसा जो उनके हृदय में सभी प्राणियों के लिए विकसित हुई थी।

हमारे शरीर की माता—जिनसे जन्म एवं पोषण प्राप्त होते हैं, अपने अतुल प्रेम और समर्पण के कारण अन्य-सभी संबंधों से अधिक महनीय संबंध हो जाती है। किन्तु अधिकतम तत्परतापूर्वक ध्यान देते हुए भी यह माँ शरीर के स्तर पर ही आराम और सुख-सुविधा सुरक्षित कर सकती है। हमारे शरीर की जननी कदाचित ही आध्यात्म-पथ पर आलोक प्रदान कर सकती है। मातृत्व का यह संबंध तब और गहरा और ईश्वरीय हो जाता है, जब आध्यात्मिक महामानव के रूप में श्री सारदा देवी माँ का उच्चतम संबंध-भाव धारण करती हैं, उन सबके लिए जो उनसे आध्यात्मिक सांत्वना एवं संबल की याचना करते हैं। इस असाधारण माता का ध्यान अपनी आध्यात्मिक संतान के शरीर-मंगल और भौतिक अभ्युदय तक ही सीमित न होकर आत्मसत्ता की गहराई में उतरता है, और अपनी संतान के आध्यात्मिक विकास में नियोजित रहता है: ज्ञानदायिनी माता होकर वह उसकी भौतिक दृष्टि से अज्ञान का अंधावरण उठा देती है, आध्यात्मिक ज्ञान प्रदान करके उसकी अन्तरात्मा को परम पवित्रता तथा धर्म-भाव से

संतृप्त कर देती है। वह जगज्जननी, विश्वमाता होकर समग्र संसार के शुभ एवं मंगल की भावना से अनवरत सचेष्ट रहती है। भवतारिणी होकर वह भवबंधन का विमोचन करती है, अंधेरे में भटकने वाले थके हुए जीव के लिए सहायता करने वाला हाथ बढ़ा देती है तथा अपने आश्रितों के हृदय में सनातन आत्मदीप जलाकर उन्हें परम शांति एवं धन्यता प्रदान करती है, जो मानवीय बुद्धि की सीमा से परे है। जन्म-मरण के गहन चक्र से छुड़ा लेनेवाली भवतारिणी माँ है वह !

आध्यात्मिक निर्देशन तथा मंगलकारी शुभाशीष की याचना लिए हुए बहुसंख्य नर-नारी माँ सारदा के यहां आते थे। उनका मातृत्वपूर्ण प्रेम जितना तीव्र एवं प्रगाढ़ था, उतना ही विस्तृत और व्यापक भी। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र से नर-नारी उनके आश्रित होने के लिए आते थे। उनके ममता-वत्सल स्नेह और शुभाशंसी रुचि की कोई सीमारेखा नहीं थी। मनुष्य को मनुष्य से किसी तरह की परिच्छिन्नता से उनकी वात्सल्य-भावना पूर्णत: अबाधित और निर्बन्ध थी। श्री सारदा देवी सभी भेद-बिद्ध सीमाओं और गतिरोधों का अतिक्रमण कर चुकी थीं। यहाँ तक कि वे तत्कालीन जन-समुदाय की सामाजिक एवं नैतिक मान्यताओं से ऊपर उठ गयी थीं।

षोडशी-पूजा अनुष्ठान में श्री रामकृष्ण ने वस्तुत: अपनी विवाहिता पत्नी की ही पूजा उन्हें प्रत्यक्ष भगवती माता मानकर की थी। मंदिर में पूजित देवी-विग्रह के पादाधार पर ही उन्हें भी प्रतिष्ठित करके श्री रामकृष्ण ने षोडशी-पूजन संपन्न किया था। इस अभूतपूर्व घटना का समानान्तर संसार के किसी साधु-संत, ऋषि-महर्षि, रहस्यवादी या ईश्वरपुरुष तथा धर्म नेता या सिद्ध-द्रष्टा के इतिहास में नहीं उपलब्ध होता है। यह पूजन श्री रामकृष्ण की आध्यात्मिक साधनाओं का चरम शीर्ष था, उनकी साधना-यात्रा की परावधि का परमबिन्दु ! बारह वर्षों के सुदीर्घ एवं बहुविध आध्यात्मिक साधनाओं से संपन्न-सिद्ध होकर वे आध्यात्मिक शक्ति के वृहत् भांडार हो गये थे। षोडशी पूजानुष्ठान के समापन में उन्होंने सामने प्रस्थापित देवी, अपनी लीला सहधर्मिणी, के चरणों में समस्त तपस्साधनाओं के फल के वस्तुनिष्ठ प्रतीक के रूप में अपनी जपमाला अर्पित की, स्वयं अपना और अपनी प्रत्येक वस्तु का समर्पण किया। माँ सारदा ने भी अपनी ओर से सब-कुछ बिना किसी संकोच या प्रतिरोध के स्वीकार किया। उनके निस्संकोच एवं सहज-स्फूर्त स्वीकार से यह स्पष्ट हो गया कि श्री रामकृष्ण के धर्म-जीवन में वे स्वेच्छापूर्वक उनकी सहभागिनी थीं। वस्तुत: षोडशी-पूजन उनके व्यक्तित्व के एक सर्वथा नवीन और महत्वपूर्ण आयाम का उद्घाटन करता है। अपने ईश्वर-उन्मत्त पति से निसृत होकर जो अध्यात्म-प्रवाह उनमें अन्त: प्रविष्ट हुआ, शांतिपूर्वक स्वीकृत होकर उनमें घुल-मिल गया। उसका किञ्चित् भी बहिर्मुख प्रदर्शन नहीं हुआ, मानो महासागर में प्रवाहित होती हुई नदियाँ उसे न्यूनतम क्षोभ भी नहीं देती हों। यह एक ऐसा महत्वपूर्ण तथ्य है, जिसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती। यह सत्य है कि किसी भरे-हुए वर्त्तन से अगर दूसरे वर्त्तन के पूरा-पूरा भरना हो, तो संग्रह-पात्र का स्रोत पात्र को समान या उससे अधिक क्षमता का ही होना चाहिए। माँ सारदा की आध्यात्मिक पात्रता श्री रामकृष्ण देव के समान थी। इसीलिए वे उनकी आध्यात्मिक ऊर्जा के महाप्रवाह को अंतर्लीन करके भी शांत एवं निष्कंप रह गयीं। अपनी आध्यात्मिक परमोच्चता एवं भावात्मक प्रभाव तथा आकर्षण की दृष्टि से षोडशी-पूजा अद्वितीय थी। हजारों वर्षों के भारतीय आध्यात्मिक जीवन का सार-स्वरूप होने के कारण श्रीरामकृष्ण परमहंस देव महाशक्ति संपन्न आध्यात्मिक ऊर्जा के जीवंत विग्रह थे। इस महाशक्ति के पूरक समतुल्य की तरह माँ सारदा भी पूजन की उस दिव्य वेला में अपने ईश्वरीय स्वभाव की अनुभूति में सिद्ध हुई तथा उन्होंने अपना परमोच्च ईश्वरीय स्तर और स्वभाव भी पूर्णत: प्रकट किया। पूजोपचार के समापन में श्रीरामकृष्ण ने, विधि पूर्वक प्रणाम मंत्र का उच्चारण करते हुए,

श्री माँ के सम्मुख अपनी साष्टांग प्रणति अर्पित की। उनका दृढ़ विश्वास था कि श्री सारदा देवी मानवीय विग्रह में साक्षात् भगवती माता थीं, और वे उनके प्रति अपने संबंध में इसी भाव से बरतते थे।

जीवन की इस अद्वितीय घटना से माँ सारदा न केवल श्री रामकृष्ण की आध्यात्मिक परमोच्चता, ख्याति और उत्तरदायित्व की सहभागिनी हुईं, बल्कि उनके धर्म-जीवन के परम लक्ष्य की सिद्धि के हेतु एक गतिशील माध्यम बन गयीं। श्री रामकृष्ण के पावन नाम से अभिहित वह महान् आध्यात्मिक-सह-सामाजिक सुधार आंदोलन— श्री रामकृष्ण मठ एवं श्री रामकृष्ण धर्म संघ अपनी बाल्यावस्था में, उनकी जीवंत उपस्थिति और प्रेरणा से ही संपोषित हुआ था। स्वतः आध्या-त्मिक शक्ति एवं प्रेरणा के महान स्रोत होते हुए, स्वयं श्री रामकृष्ण के शिष्य-पार्षद भी अपने आध्यात्मिक तथा अन्य मानवहितकारी कार्यों में उन्हीं के प्रोत्साहन और निर्देशन की उम्मीद रखते थे। श्रीरामकृष्णकी महासमाधि से जिन्होंने अपनेको अनाथ अनुभव किया वे सब आध्या-त्मिक शांति एवं सांत्वनाके लिए उन्हींके निकट जाते थे। वे स्वयं भी उनके आध्यात्मिक विकास के प्रति अपना उत्तरदायित्व समझने लगीं। इस तरह, ईश्वरीय विधान से नियोजित परिस्थितियों में माँ सारदा अपने सन्निकट एकत्र होनेवाले सभी के लिए असीम प्रेम तथा प्रेरणा का स्रोत एवं केन्द्र हो गयीं।

श्री रामकृष्ण के संदेश के क्रमिक प्रसार के साथ-साथ निकट और दूर तथा पूरब और पश्चिम के बहु-संख्य भक्त उन्हें अपनी श्रद्धांजलि और पूजा समर्पित करने तथा उनसे दीक्षित होने के लिए जमा होते थे। उनका करुणार्द्र मुखमंडल एवं प्रसादपूरित आशीष उन लोगों के हृदयों को जीत लेता था। उनकी उपस्थिति में वे अपने को उच्च आध्यात्मिक स्तर पर आसीन अनुभव करते थे—मानों वे साक्षात् भगवती माता के सान्निध्य में ही हों।

श्री माँ का नित्य-प्रति का जीवन-क्रम इतना मौन और आडंबररहित था कि अपनी सामान्यता और घटनाशून्यता के कारण वह चकराने वाला लगता है। ऊपरी तल पर देखने से उसमें कुछ भी विशिष्ट या स्पष्ट रूप से चौंकानेवाला नहीं लगता, किन्तु उनके हृदय की गहराई में ईश्वरीय चेतना की दिव्य आभा छिटकती रहती थी। श्री रामकृष्ण के लिए तो वह मानव-देह में प्रकट आनंदमयी भगवती माता ही थीं।

श्री रामकृष्ण के प्रमुख शिष्यों के द्वारा माँ को श्रेष्ठ समादर भाव से देखा जाना उनके ईश्वरीय व्यक्तित्व की दिव्य झाँकियाँ प्रस्तुत करता है। वे उन्हें भगवती माता के प्रत्यक्ष एवं सत्य विग्रह का रूप मानकर उनके प्रति श्रद्धा-सम्मान का भाव रखते थे। हम उनमें से तीन प्रमुख शिष्यों के भाव का संक्षिप्त संकेत प्रस्तुत करते हैं:—

१. श्री रामकृष्ण के सर्वाधिक अग्रगण्य शिष्य, स्वामी विवेकानन्द कहते हैं: "तुमने अभी तक श्री माँ के जीवन का आश्चय जनक महत्व और उनकी महिमा को नहीं समझा है। शक्ति के बिना संसार का उद्धार नहीं हो सकता....माँ सारदा का उद्भव उस आश्चर्य जनक शक्ति को पुनर्जीवित करने के लिए हुआ है। और उनको केन्द्र बनाकर संसार में पुनःअनेक गार्गी एवं मैत्रेयी का उद्भव और विकास संभव है।" अपने गुरु के अनुभवों के प्रकाश में भारतीय अध्याम के ऊर्ध्वसंचारी संदेश का प्रचार करने हेतु युगसृजक प्रस्थान करने के ऐतिहासिक क्षण में श्री माँ से उपलब्ध आशीर्वाद की चर्चा करते हुए स्वामी जी कहते है: "श्री माँ का प्रसाद एवं आशीष मेरे लिए परम श्रेष्ठ तथा महत्वपूर्ण है। अमेरिका प्रस्थान करने के पूर्व मैंने पत्र लिखकर उनसे आशीष माँगा था। उनका अमृत आशीष उपलब्ध हुआ: और मैं एक ही छलाँग में महासागर के पार हो गया।"

२. 'श्री रामकृष्ण लीला प्रसंग के ग्रंथकार स्वामी सारदानंद, जो ठीक ही माँ के निज-नाम से अभिहित हुए और जीवन भर श्री रामकृष्ण मठ एवं संघ के मंत्री रहे, अपने को उनके कलकत्ता स्थित निवास का द्वारपाल

मात्र समझकर संतुष्ट रहते थे। एकबार उनके किसी भक्त से उन्होंने विशिष्ट भाव में कहा, 'मैं भी उसी माँ सारदा की कृपा के लिए प्रार्थना एवं प्रतीक्षा करता हूँ, जिनका आशीर्वाद तुमने पाया है। अगर उनकी मौज हो जाय तो वे तुम्हें तत्काल ही मेरे स्थान पर आसीन कर सकती हैं।' भारत में शक्ति की उपासना पर प्रणीत अपनी महान् बँगला पुस्तक माँ को समर्पित करते हुए वे लिखते हैं: 'जिनके कृपा-कटाक्ष से ग्रंथकार प्रत्येक नारी रूप में भगवती माता के प्राकट्य का अनुभव कर सका—उन्हीं के पादारविंद में पूर्ण विनम्रता एवं भक्ति से यह ग्रंथ समर्पित है।'

३. स्वामी प्रेमानन्द, जो सभी के प्रति अपने अतुलनीय प्रेम के लिए सुविदित थे, श्री माँ के व्यक्तित्व के इस आयाम को प्रमुख रूप से प्रस्तुत करते हैं। वे कहते हैं: "श्री माँ को किसने समझा है?......क्या तुम नहीं देखते कि कितने लोग उनके आशीर्वाद के लिए दौड़-दौड़ कर आ रहे हैं? हमलोग स्वयं उनके पास उन विष-बिद्ध पतितों को भेज देते हैं, जिन्हें हम नहीं सँभाल सकते। वे मानव-देह में प्रत्यक्ष देवी की तरह विनम्र लीलाकर रही हैं। घर की माँके रूपमें वे कितनी धीरता सहनशीलता और शान्ति के साथ नित्य-प्रति का जीवन संपादन करती हैं! अतीत के इतिहास में इस प्रकार के आदर्श को कभी नहीं अभिव्यक्त किया गया.. तुम उनके ईश्वरीय प्रेम और हृदय की अनंत विस्तृति और उदारता को देखो......उनका असीम कृपाप्रसाद सबके लिए है। उसके कणमात्र से हम कृतकृत्य हो जाते हैं।'

विचार और कर्म से बोझिल, घटनासंकुल जीवन के बाह्य, वस्तुपरक मानदंडों से प्रेरित होकर अध्ययन करने पर माँ सारदा के उदात्त जीवन का वास्तविक परिप्रेक्ष्य समझ में नहीं आने की पूरी संभावना है। मनुष्य की सच्ची मूल्यवत्ता एवं वास्तविक महानता का आकलन उसके द्वारा उत्पन्न की हुई राजनैतिक उथल पुथल एवं सामाजिक परिवर्तनों से नहीं होता, बल्कि उसकी आध्यात्मिक सम्पदा से, जो अपने प्रभाव-प्रेरण द्वारा नर-नारियों में आत्मा के गंभीरतर मूल्यों का बोध जगा दे सकता है। वस्तुतः, सच्ची आध्यात्मिक महानता का वही लक्षण है। माँ सारद इस अर्थ में ईश्वरीय गुणों तथा आध्यात्मिक संपदाओं का जीवंत विग्रह ही थीं।

बाल्यावस्था में ही नववधू के कर्त्तव्य-बोध से, अपने-ईश्वर लीन पति के साथ रहकर उनकी सेवा करने हेतु दक्षिणेश्वर की यात्रा में 'दस्यु-पिता' के घटना प्रसंग से उनके सहज-निर्दोष व्यवहार, मधुर संवाद तथा बाल-सुलभ विश्वास का प्रमाण मिलता है, जिससे एक लुटेरे का अद्भुद् रूपांतरण, महान् हृदय-परिवर्तन हुआ, और वह पिता की भांति स्नेहार्द्र होकर ममता-वत्सल हो गया। उस घटना-प्रसंग में निहित गंभीर खतरे की संभावना को समझने के लिए उसका किंचित् स्मरण अप्रासंगिक नहीं होगा। बालिका सारदा ने स्वयं को उस भयानक दस्यु के सम्मुख अकेली पाया, जो संध्या-वेला में जोरों से चिल्ला रहा था। उस समय वे नगर-बस्ती से दूर-विस्तृत, निर्जन क्षेत्र में अपने संगियों से बिछुड़कर, नितांत अकेली और असहाय थीं। किन्तु उन्होंने तत्काल हीं स्थिति पर नियंत्रण पा लिया। पूर्ण प्रत्युत्पन्नमतित्व, आत्मविश्वास एवं आश्वस्ति के साथ प्रियता का संचार करती हुई, उन्होंने दस्यु को संबोधित किया, 'पिताजी, मेरे संगी-साथी मुझे छोड़ गये हैं; मेरे भी मनमें होता है कि मैं राह भूल गयी हूँ। कृपाकर आप मुझे मार्ग बताते हुए ले चलें जिससे मैं उनके साथ हो जाऊँ। पिताजी, आपके दामाद दक्षिणेश्वर के काली-मंदिर में रहते हैं, उनसे मिलने के लिए मुझे वहाँ जाना है। अगर आप राह बताते हुए मुझे वहाँ तक ले चलें तो वे कृतज्ञ-भाव से आपका खूब स्वागत-सम्मान करेंगे।' यह बात हो ही रही थी कि इसी बीच लुटेरे की पत्नी भी उसमें शरीक हो गयी, जो उसके पीछे पीछे ही आ रही थी। नवागंतुक को महिला के रूप में देखकर श्री सारदा देवी को अत्यधिक आश्वस्ति का बोध हुआ।

ठीक-ठीक अनुमान करते हुए कि वह स्त्री लुटेरे की पत्नी होगी, उन्होंने उसका हाथ पकड़कर स्नेह-सिक्त स्वर में निवेदन किया, 'मैं आपकी कन्या सारदा हूँ, माताजी ! संगियों से बिछुड़कर, निर्जन मैदान के निविड़ अंधकार में, बिल्कुल अकेली ! मैंने स्वयं को अत्यन्त भयानक विपत्ति में पड़ी हुई अनुभव किया। दैवयोग से आप और पिताजी आ गये, नहीं तो मैं अपनी सुरक्षा के लिए क्या करती, समझ में नहीं आता !'

इतना कहना था कि दस्यु-दम्पति निरस्त्र एवं रूपांतरित हो गए। बालिका सारदा की हृदयग्राही सरलता प्रीति-वर्द्धक व्यवहार तथा सरल विश्वास ने उनके हृदयों को तीव्रता से स्पर्श किया। उनलोगों ने उन्हें आश्वस्त किया तथा अपनी ही कन्या की भाँति उनके साथ बरतने लगे। वे उन्हें अपने घर ले गये, खिलाया-पिलाया, और रात भर साथ रहने के लिए उनके आराम की पूरी व्यवस्था की दूसरे दिन सवेरे रास्ता बताते हुए वे उन्हें अगले पड़ाव तक ले गए, जहाँ वे अपनी जमात के साथ हो गयीं। आध्यात्मिक रूपांतरण का यह अद्भुत चमत्कार ! उत्तरवर्त्ती जीवन में जब कभी दस्यु-दंपति दक्षिणेश्वर गए, श्री रामकृष्ण ने भी उनके प्रति ठीक ठीक दामाद का ही व्यवहार रखा।

माँ का प्रेम पूर्ण उदार, सर्वाश्लेषी और क्षमाशील होता है। उसमें किसी प्रकार का भेद-भाव, पक्षपात या उच्च-निम्न का व्यतिरेक नहीं हो सकता। अपनी सभी संतानों में प्रत्येक के लिए वह माँ होती है। माँ सारदा अपने निकट आने वाले प्रत्येक पुरुष, स्त्री और बच्चे के लिए 'माँ' ही थी। उनके जीवन में सभी के लिए अपना मातृसुलभ प्रेम ही सर्वोपरि था। अपने चरणों में आश्रय चाहने वाले सभी प्राणियों के लिए उनकी उत्कंठित शुभाशंसा की कोई सीमा नहीं थी। उनके निकट आनेवाले सभी लोग अपने संबंधियों से कहीं अधिक प्रगाढ़ प्रियता पाकर धन्य हो जाते। यही कारण था कि वे उनके सम्मुख अपना हृदय खोलकर रख देते थे, अन्तर्जीवन तनाव और दुश्चिन्ताओं से मुक्त हो जाते, तथा के गुह्य भेद और विचारों को भी उन्हें विश्वासपूर्वक सौंप देते थे। श्री माँ भी अपनी ओर से प्रत्येक और सबके लिए अपना प्रेम—प्रसाद बाँटतीं और इसमें श्रेणी, जाति-वर्ण, संप्रदाय, मतवाद या लिंग—भेद से किसी प्रकार पक्षपात नहीं करती थी। यत्र-तत्र से ली हुई उनके जीवन की कुछ घटनाएँ, निकट आनेवालों के प्रति उनकी मातृवत्सल शुभाशंसा एवं मंगल भावनाओं को पूर्णतः उजागर करती हैं।

जयरामबाटी में माँ के निवास के निर्माण हेतु निकट के गांव से कुछ मुसलमान श्रमिक लिये गये थे। सामाजिक दृष्टि से कुख्यात श्रमिकों को माँ सारदा के निवास–निर्माण में लगे हुए देखकर ग्रामवासियों में एक हलचल सी हो गयी। किन्तु माँ को इससे कोई क्षोभ नहीं हुआ। इतना ही नहीं ! एक दिन उन मुसलमानों में से एक व्यक्ति ने कुछ केले निवेदित करते हुए कहा, "माताजी, मैं इन्हें श्री रामकृष्ण देव के लिए ले आया हूँ। आप इन्हें स्वीकार करेंगी ?' माँ ने बहुत प्रसन्नता और तत्परता के साथ उस विनम्र प्रेमार्पण को स्वीकार कर लिया। कहना न होगा कि उन्होंने उन केलों को परम हंस देव के लिए अर्पित कर दिया।

दूसरे अवसर पर अमजद नामके एक मुसलमान श्रमिक को भोजन कराने के लिए वे अपने घर में ले गयीं। भोजन समाप्त होने पर उन्होंने स्वयं उस स्थान को साफ किया। उनकी भतीजी नलिनी देवी, ने पारंपरिक मान्यताओं के कारण सशक्त शब्दों में इसका विरोध किया और चिल्लाकर कहने लगी, "ओ मेरी चाची ! इस तरह के आचरण से तो आपकी जाति नष्ट हो जायगी !' किन्तु श्री माँ ने उसे बीच ही में रोकते हुए कहा, "शांत रहो ! यह अमजद भी मेरा उतना ही वास्तविक पुत्र है, जितना शरत् (स्वामी सारदानन्द) स्वयं है।

एक बार माँ सारदा से अनुरोध किया गया कि एक शिष्य को उसकी आचरण गत भूल के कारण, वे

अपने निकट नहीं आने दें। लेकिन उनके भीतर की प्रेम-वत्सल माँ भला ऐसे अनुरोध पर क्या ध्यान देतीं! उन्होंने अतिशय कोमल-भाव से उद्रत होते हुए कहा, "अगर मेरा बच्चा धूल कीचड़ से लथपथ हो गया तो उसे धो-धाकर साफ कर देना, और स्वच्छ पुत्रको पुन: अपनी गोद में बिठा लेना क्या मेरा कर्तव्य नहीं है ?'

सच्चे पश्चात्ताप से भरे हृदय से निस्संकोच होकर, अपने पापों का आख्यान करनेवाली एक महिला को, जिसका जीवन बहुत पवित्र नहीं था, माँ सारदा ने अपनी भावोद्रिक्त बाँहों मे समेट कर आश्वस्ति और सांत्वना के य शब्द कहे—"अभी तक जो-कुछ किया है, उसके लिए शोक न करो। तुम अपनी सभी अधोगामी वृत्तियों पर विजय पाकर उनसे बहुत ऊपर उठ जाओगी।" फिर; माँ ने उसे दीक्षित किया तथा साधन अभ्यास के लिए निर्देशन प्रदान किए।

पश्चिम की सफल धर्मयात्रा के बाद जब स्वामी विवेकानन्द की पाश्चात्य महिला-शिष्याएँ माँ सारदाकी संनिधि में आने लगीं तो उन्होंने अपनी सहज आत्मीयता से उनलोगों को अपना मानकर स्वीकार किया। वे कहतीं, "ये लोग भी मेरी संतान हैं।" वे उनलोगों के साथ खुलकर मिलतीं यहाँ तक कि साथ-साथ भोजन एवं शयन भी करतीं। उनकी दृष्टि में वे सभी श्रीरामकृष्ण परमहंस के आध्यात्मिक परिवार की ही सदस्य-संततियाँ थीं।

वर्तमान शताब्दी के आरंभ में, जब स्वदेशी आंदोलन जोर पकड़ चुका था, माँ के एक शिष्यने उनके भाइयोंके बच्चों के लिए शुद्ध स्वदेशी कपड़े खरीदे। किन्तु परिवार की महिलाओं ने उन मोटे कपड़ों को नापसंद किया और दूसरी तरह के कपड़े खरीदने को कहा। इस पर उस शिष्य ने देशभक्ति की भावना से उत्तेजित होते हुए कहा, "किन्तु आपलोग जो पसंद करती हैं, वे विदेशों में बने कपड़े हैं। मैं उन्हें कैसे खरीद सकता हूँ ?" इस बातचीत के समय माँ सारदा भी वहीं उपस्थित थीं, और उन्हों किंचित मुसलमान के साथ कहा-"वे, पश्चिम के लोग, भी मेरी संतान हैं। मुझे सबको अपनी लय में लेना है, सबको अपनी संगति में बिठा लेना है। क्या मैं कभी किसी को छोड़ सकती हूँ, परिच्छिन्न हो सकती हूँ ? तुम उनके लोगों लिए वैसे ही कपड़े खरीद दो, जो वे पसंद करते हैं।"

श्री माँ के जीवन के ऐसे अनेकानेक प्रसंगो में से कतिपय उदाहरण ही यहाँ प्रस्तुत किये गये हैं। यातायात के विकास तथा नारी-शिक्षा के प्रसार के कारण आज ये बातें असाधारण न भी लगें, किंतु तत्कालीन सामाजिक स्थितियों एवं विधि-विधान रूप प्रतिबंधों पर ध्यान देने से स्पष्ट हो जाता है कि माँ सारदा का उन प्रसंगों में उपर्युक्त प्रकार से बरतना निश्चय ही क्रांतिकारी कोटि का था। यहाँ यह कहना समीचीन है कि भारतीय नारियों में आने वाले व्यापक पुनर्जागरण का यह पूर्वारंभ ही था। जीवन के इन घटना-प्रसंगों में माँ सारदा के हृदय की असीम विस्तृति, मनकी उदारता सार्वभौम-सर्वाश्लेषी दृष्टि और, इनसे भी अधिक, उनके मातृवत्सल प्रेम-स्नेहके स्पष्ट एवं महत्वपूर्ण संकेत मिलते है। मातृवत्सल प्रेम एवं तरल, उत्कंठित शुभशंसा ही उनके अस्तित्व का ताना-बाना था।

मन, वाणी और कर्म की निर्मलता ही आध्यात्मिक जीवन की आधारशिला हैं। माँ के जीवन पर ध्यान देने से स्पष्ट हो जाता है कि वे पवित्रता का ही जीवंत विग्रह थीं। अपनी आध्यात्मिक साधनाओं और अनुभूतियों की चर्चा करते हुए, श्रीरामकृष्ण कहते थे: "इसका श्रेय उनको भी उतना ही है जितना मुझे।" उनकी निष्कलुष पवित्रता और संतोचित प्रकृति श्री रामकृष्ण देव के लिए सुरक्षा के कवच और अस्त्रोपकरण थे। वे इतनी पूर्ण-पवित्र थीं कि ब्रह्मानन्द के रस-सागर में तिरते हुए अपने पतिदेव को सामान्य, सांसारिक जीवन के निम्न धरातल पर कभी नहीं खींच सकती थी। सामान्य पत्नी और धर्म-जीवन की संगिनी इन दोनों विकल्पों में से, एक का चुनाव कर लेने का अवसर दिए जाने पर, उन्होने कहा था कि वे उन्हें आध्यात्मिक ऊँचाइयों से खींच कर नीचे ले आने के

लिए उनकी पत्नी नहीं हुई हैं। व तो उन्हें उनके जीवन के परम आदर्शों एवं अभीप्साओं को प्राप्त करने में सहयोग करने हेतु, उनकी लीलाओं की सहधर्मिणी होने के लिए आयी थीं। श्रीरामकृष्ण ने उन्हें दाम्पत्य जीवन के सांसारिक मार्ग का चयन करने की स्वाधीनता प्रदान की, किंतु अद्वितीय तत्वों से निर्मित होने के कारण उन्होंने लीला सहधर्मिणी का उच्चतर विकल्प ही अपनाया था।

इन सभी स्थितियों एवं घटनाक्रमों से गुँथी हुई उनकी जीवन-माला के विविध मनकों को एक स्वर्ण सूत्र में पिरोनेवाली है उनके चरित्र की पूर्ण पावनता। स्वामी अभेदानन्द ने उनके लिए संस्कृत में लिखित अपनी स्तुति में उन्हें 'पवित्रता स्वरूपिणी' अर्थात पवित्रता के मानवीकरण की तरह चित्रित किया है। पवित्रतासे गठित उनका सार-स्वरूप ही था। उनके निर्विकार जीवन में उपलब्ध उच्चता के स्तर की झलक उन्हीं के शब्दों से मिलती है : 'चाँदनी रातों में मैं चाँद की ओर ध्यान से देखते हुए करबद्ध प्रार्थना करती, "मेरा हृदय सामने उगे हुए चाँद की किरणों की तरह शुद्ध-पवित्र हो जाय !' या, "हे प्रभु ! चाँद में भी थोड़ा दाग है, किंतु मेरे मन में दाग का किंचित चिह्न भी नहीं रहे।"

श्री माँ के निरंजन-निर्विकार चरित्र की प्रशंसा करते हुए श्रीरामकृष्ण देवने स्वयं घोषणा की थी : "अगर वे इतनी शुद्ध नहीं होतीं तो, कौन जानता है; मैं स्वयं उनके प्रलोभनों के कारण आत्म संयम खो देता ! विवाह के बाद मैंने भगवती माता से प्रार्थना की थी, "मेरी पत्नी के मन से वासना की न्यूनतम कालिमा भी हटा दो,' उनके साथ जीवन-यापन करते हुए मैंने समझा कि भगवती माता ने सचमुच मेरी प्रार्थना स्वीकृत की थी।"

एक विशेष संदर्भ में श्रीरामकृष्ण को दिये गये उनके उत्साहित उत्तर से भी स्पष्ट हो जाता है कि वे परम निर्मल, पूर्ण विशुद्ध तत्वों से निर्मित हुई थीं। एक दिन उन्होंने माँ के समक्ष सीधे ही यह प्रश्न रखा, "क्या तुम मुझे माया के जीवन में नीचे खींच कर रखना चाहती हो ?"

"ऐसा मैं क्यों करूँगी ? मैं तो आपको मात्र आध्यात्मिक जीवन में सहयोग करने आयी हूँ,"—तत्काल और बेहिचक उत्तर हुआ—वही उत्तर जो संत—पति को उनकी योग्य साध्वी पत्नी से मिलना चाहिए। श्रीरामकृष्ण के धर्म-जीवन की इहलौकिक लीला में सहयोग प्रदान करने के लिए अपना विशेष क्षेत्र उन्होने समझ लिया था। सांसारिक जीवन जीने के लिए वे उनके साथ संयुक्त नहीं हुई थी, बल्कि अपने ईश्वरोन्मत्त पति की वास्तविक साथी—सहयोगी एवं उनकी सच्ची जीवन संगिनी होने के लिए। उनके हृदय की तीव्रतम अभीप्सा अपने पति के साथ-साथ रहकर उनकी देखभाल और सेवा करने की थी। साथ ही, उनकी जीवन-विधा। अनुकूल अपने जीवनकोढाल देनेकी उनकी अभीप्सा भी उतनी ही गहरी और हार्दिक थी। माँ सारदा का चरित्र परम—स्फीत, पूर्ण निरञ्जन एवं निर्विकार था, मानों वे प्रातःकाल के सद्यः मुकुलित पुष्प की सुगंध हों, जो मनुष्य से अस्पृष्ट और अनाघ्रात हो।

कहना न होगा कि माँ सारदा भारत की महान् नारियों की उस दीर्घ—प्राचीन परंपरा में थीं, जिन्होंने भारतीय नारीत्व को उद्भासित किया तथा अपने साधु—जीवन, निर्मल चरित्र, महान् वैदुष्य एवं धीरोदात्त कृत्यों से राष्ट्रीय इतिहास के पृष्ठों को उजागर किया। उनकी संख्या महती है, सहस्राधिक है। उनसे परिचित होने के लिए हमें इतिहास के पृष्ठों की ओर ध्यान देना होगा। तभी हम विचार, कर्म, सेवा, त्याग साहित्यक देन और साहसिक कृत्यों तथा धारणा एवं ध्यानादि से उद्दीप्त उनके असाधारण जीवन के संबंध में जान सकते हैं।

समकालीन भारत के संदर्भ में माँ सारदा का जीवन भारतीय नारीत्व की कतिपय अद्वितीत रूप—रेखा प्रस्तुति करता है, उस आदर्श का वह सहजाता

से प्रज्ञ उन्नतम शीर्ष—प्रेम, जो अकृत्रिम सरलता, धर्म—भावना, पावनता एवं आत्म-समर्पण गठित है। अपने अहं को पूर्णतः विलीन करने या स्वयम् को पूरा मिटा देने के क्रम में ही उन्होंने इन गुणों एवं विभूतियों को सहज जीवन में, बिना अधिक प्रयास के ही, संग्रह कर लिया था वे स्वभाव से ही संकोचशील थीं, और किसी प्रकार की ख्याति, प्रशस्ति या विज्ञापन की कोई कामना उन्हें नहीं थी। संसार के कोलाहल से दूर, उनकी जीवन विधा शांत एवं सुस्थिर थी, चाहे वह जन्म-ग्राम जयरामबाटी या कमारपुकुर हो या महानगर कलकत्ता। वे सदैव ईश्वरानुभव से अभिन्न एवं उन्हीं में स्थित होकर रहतीं, चाहे ...किसी या अन्य कार्य करती थीं।

वे स्वयं कहा करती थीं. "श्रीरामकृष्णदेव ने ईश्वर का मातृत्व प्रकट करने के लिए ही मुझे अपने पीछे यहाँ छोड़ दिया।" यद्यपि यह कहा जा सकता है कि उनमें मातृत्व भाव ही प्रबल था, किन्तु पत्नी, साध्वी और आध्यात्मिक गुरु के रूपमें भी वे अपनी अभूतपूर्व पूर्णता के कारण अद्वितीय थीं। अपने अनेक कर्तव्यों और दायित्वों का पालन करने में वे सब तरह से निष्णात थीं प्रत्येक क्षेत्र में अपने दायित्वों का निष्पादन करने में वे पूर्णतः योग्य एवं कुशल प्रमाणित हुईं।

श्रीरामकृष्ण जैसे अध्यात्म... गुरु का पूरक-प्रतिरूप होने से, श्री सारदा देवी को कितने ही थके....माँदे, प्रमाद बोझिल जीवों को आध्यात्मिक संबल और साधन-निर्देशन प्रदान करना होता था। जब परमहंस देव ने नश्वर आवरण हटा दिया और महासमाधि में प्रविष्ट हो गए, तो एक विश्वव्यापी आंदोलन के आध्यात्मिक नेतृत्व का भार उत्तराधिकार की तरह माँ सारदा के कंधों पर ही आया। वे तत्परतापूर्वक इस अवसर के योग्य हो गयीं, और पूरी विनम्रता के साथ श्री रामकृष्ण के नाम पर ही इस दायित्व को स्वीकार किया। श्रीरामकृष्ण देव ने उन्हें इस गुरु-कार्य के लिए तैयार कर दिया था, और उन्होंने इसे बिल्कुल सहजता से ग्रहण किया। तीन दशकों से भी लंबी अवधि तक उनका आध्यात्मिक निर्देशन शिष्यों, भक्तों एवं जिज्ञासुओं को मिलता रहा। उनका साधन-निर्देशन और आशीष से बहुसंख्य भक्त एवं साधक धन्य एवं कृतकृत्य हो गए, उन्होंने उनके चरणों में अपनी आध्यात्मिक प्यास मिटायी।

उनके आध्यात्मिक प्रवचन एवं संवाद कुछ संन्यासी एवं गृहस्थ शिष्यों-पुरुष एवं महिला दोनों—द्वारा उल्लिखित एवं सुरक्षित किये गये है। इन संवादों की भाषा में ग्राम्य सरलता है तथा ये आत्याल्मिक प्रेरणा एवं प्रोत्साहन से पुर्णतः ऊर्जस्वित है। कारण हैं कि उनकी वाणी हृदय से ही निःसृत होती है, वैसे हृदय से जो ईश्वरीय ज्ञान की स्वानुभूति से आप्लावित था। श्रीराम कृष्ण देव ने उनके संबंध में कहा था : वे सारदा अर्थात, सरस्वती हैं ज्ञान प्रदान करने के लिए उनका आगमन हुआ है। वे ज्ञान प्रदायिनी है, और परम विशिष्ट ज्ञान से संपन्न हैं।

इस संक्षिप्त अध्ययन के समापन में हम श्रीमाँ की उस गंभीर, महत्वपूर्ण प्रेरित ईश्वर, अमृतवाणी का स्मरण करें जो यद्यपि किसी व्यक्तिविशेष के निमित्त उच्चरित हुई थी, किन्तु फिर भी, जो नीरसरता एवं भ्रांति से ग्रस्त मानवता के लिए उनके अंतिम संदेश की तरह मान्य एवं अनुसरणीय है:"मेरे बच्चे, अगर तुम शांति चाहते हो तो परदोषदर्शन और छिद्रान्वेषण छोड़ दो। अच्छा तो यह होगा कि अपने दोषों को ही देखो। समग्र जगत को अपना बनाना सीखो। कोई भी गैर या अपरिचित नहीं हैं, मेरे बच्चे। यह सारा संसार तुम्हारा अपना ही है।"

कुल एवं धर्म, जाति और रंग, विकास और पिछड़ेपन, धन एवं दरिद्रता के आधार पर विभिन्न खेमों में कटे—कटे वर्तमान संसार के लिए कितना बहुमूल्य संदेश हैं यह! यदि पथभ्रांत एवं स्वेच्छाचारी मनुष्य अपनी कुटिल—दोषयुक्त गतिविधियों को छोड़ कर, श्री माँ के ज्ञानोपदेश का ईमानदारी से अवलंबन करे तो वह अपने तथा अपने साथियों के लिए

कितनी सुख शांति से भरे जगत का निर्माण कर सकता है ! क्या मनुष्य इस सार —संदेश का अनुसरण करना सीखेगा ? तब उसकी उपलब्धि महान होगी। अगर वह इस पर ध्यान न दे सका तो क्षति भी उतनी ही गहरी एवं व्यापक होगी।

श्री सारदा माँ के संबंध में लिखित इस निबंध का प्रारंभ भगिनी निवेदिता द्वारा समर्पित श्रद्धांजलि से हुआ हैं। श्री माँ की आध्यात्मिक महानता के समक्ष, निवेदिता अपने को मात्र एक अज्ञ संतान समझती थी इस अध्ययन का शीर्षक—"निरंजन पवित्रता"—उन्हीं की श्रद्धांजलि से प्रेरित हुआ हैं। हम इसका समापन भी उन्हीं के एक पत्र के उद्धरण से करेंगे जो उन्होंने श्री माँ को ही लिखा था: 'आप सचमुच ईश्वर की सर्वाधिक आश्चर्यजनक कृति हैं—संसार के लिए श्रीरामकृष्ण के प्रेमका दिव्य पात्र, एक प्रतीक—धरोहर जिसे उन्होने अपने बच्चों के लिए रख छोड़ा......निश्चय ही ईश्वर की आश्चर्यमय वस्तुएँ पूर्णतः मौन और शांत होती हैं, तथा अनदीखे ही हमारे हृदयो में समा जाती हैं। हवा और सूरज की रोशनी तथा बगीचे या गंगा की मधुरिमा ही वे मौन सत्ताएँ हैं, जो आपकी तरह हैं।

अनुवादक:—शितिकंठ बोधिसत्व

जीवन कथा

श्रीसारदा देवी

एकादश अध्याय
(श्यामपुकुर और काशीपुर में)

श्रीमत स्वामी वेदान्तानन्दजी महाराज
सचिव, रामकृष्ण मिशन आश्रम, पटना

सभी दिन एक समान नहीं बीतते। भक्तगणों को लेकर श्रीरामकृष्ण ने आनन्द की जो हाट बसायी थी उसके टूटने का समय हो गया। साथ-साथ सारदादेवी के दुःख एवं परीक्षाके भी दिन आ गये। 'अतिरिक्त परिश्रम ओर अनवरत वार्तालाप के कारण सन १८८५ ई॰ के जुलाई महीनेमें श्रीरामकृष्ण के गले में व्यथा और घाव हुए। जांच करने के उपरान्त चिकित्सकों ने कहा'रोहिणी' रोग हुआ है जिसे अंगरेजी में कैन्सर कहते हैं। चिकित्सा की व्यवस्था हुई, किन्तु दक्षिणेश्वर में उपयुक्त डाक्टर-कविराज पाने में बडी कठिनाई थी इसीसे भक्त गण कलकत्ता के श्यामपुकुर स्ट्रीट में एक मकान किराये पर लेकर सितम्बर के महीने में उन्हे वहाँ ले आये सारदा देवी कुछ दिनों तक दक्षिणेश्वर में अकेली रही। लेकिन श्रीरामकृष्ण को श्यामपुकुर लाकर भक्तगण दो बड़ी असुविधाओंमें पड़ गये। केवल अच्छे डाक्टर और अच्छी दवा की व्यवस्था करने से ही तो रोग आराम नहीं होता उपयुक्त पथ्य एवं आवश्यकतानुसार सेवा सुश्रूषा की व्यवस्था भी तो करनी चाहिए। दिन के समय तो अनेकव्यक्ति आते-जाते, किन्तु गृहस्थ भक्तों को रात मे ठहरने में एक बड़ी कठिनाई होती थी। बालक भक्तगण दल बाँध कर, स्कूल कॉलेज की पढ़ाई में नागाकर उनकी सेवा सुश्रूषा करनेको प्रस्तुत हुए। इस कार्य के लिए घर पर अपशब्द सुनने पर भी उन्होंने उस पर ध्यान नहीं दिया। किन्तु पथ्य बनाकर प्रस्तुत करने को भार किसे दिया जाय। इतने दिनों से देखा गया था कि एकमात्र सारदादेवी ही श्रीरामकृष्ण की पसन्द के अनुरुप एवं उनका पेट जिसे सह सके, ऐसा पथ्य तैयार करती थीं। किन्तु वे तो ठहरीं अत्यन्त लज्जाशीला !

इस एक महला घरमें जहां स्त्रियों के लिए स्वतंत्र रूप से रहने योग्य कोई घर घर नहीं, वहां आकर क्या वे इतने पुरुषों के बीच रह पायेंगी? जिन कुछ एक भक्तों से श्रीरामकृष्ण ने स्वयं परिचय करा दिया था उन्हें छोड़ कर और किसी के साथ वे बातचीत नहीं करतीं अधिकांश पुरुष भक्तों ने कभी उन्हें अपनी आंखों से भी देखा नहीं था। सो जो हो, भक्तों ने एक दिन यह बात श्रीरामकृष्ण से चलायी। उन भक्तों से उन्होंने कहा, 'वह क्या यहाँ आकर रह पायगी ? उन्हें कह कर देखो। सारी बाते जान सुनकर वह आना चाहे तो आये।

स्वयं सारदादेवी पर कर्त्तव्य निर्णय का भार पड़ा। लज्जाशीलता जैसे उनके पहननेके वस्त्रके समान थी। उसे डालकर वे सर्वदा अपनेको ढेख रखती थी। किन्तु आवश्यकता होने पर वे लज्जा संकोच का परित्याग कर साहस पूर्वक जैसी आवश्यकता होती उसके अनुरूप करतीं। पति सेवा के प्रयोजन के सामने उनकी कोई अपनी असुविधा क्या उनके रास्ते पर खड़ी हो सकती थी ? भक्तों के आह्वान पर तुरत वे श्यामपुकुरके मकानमें आ उपस्थित हुई श्यापुकुर के उसी छोटे मकान में अपनी हर प्रकार की असुविधा को हँसती हुई सहकर किस प्रकार श्रीरामकृष्ण की सेवा में वे दिन काटती थीं, यह सोचकर अवाक् हो जाना पड़ता है। मकान में मात्र एक पैखाना और स्नानकी भी एक ही जगह थी। इसलिए वे रात के तीन बजे के पहले ही उठकर शौच आदि से निवृत होकर छत पर जाने की सीढ़ी की बगल वाली झोपड़ी में चली जातीं। सारा दिन वहीं बितातीं। वही थी रसोई की जगह। पथ्य तैयार होने पर लाटू या बड़े गोपाल की मार्फत खबर देकर श्रीरामकृष्ण के कमरे से लोगों को हटवा देतीं एवं उन्हे भोजन करा आतीं। किसी किसी दिन भक्तगण स्वयं पथ्य लाकर खिला देते। दोपहर को उसी झोपड़ी में वे भोजन और विश्राम करतीं रात के ग्यारह बजे जब सब सो जाते तब वे दोतला से नीचे उतरतीं और जो कमरा उनके लिए निर्दिष्ट था उसी कमरे में सोतीं। फिर रात के दो बजे के बाद उठ जातीं। इस तरह कुल तीन घंटे सोकर वे खुश थी प्राण में केवल एक आशा कि श्रीरामकृष्ण कब स्वस्थ होंगे मन में अन्य चिन्त के लिए कोई स्थान नहीं इसी प्रकार नीरव निःशब्द भाव से वहां समय काटती कि जो लोग प्रतिदिन श्रीरामकृष्ण के यहां आना जाना करते उनमें भी अनेक लोग यह नहीं जानते कि वे श्रीरामकृष्ण की प्रधान सेवा का भार लेकर वहाँ हैं।

श्यापुकुर में श्रीरामकृष्ण प्रायः तीन महीने तक थे। वहाँ चिकित्सा और सेवा सुश्रूषा में कोई त्रुटि नहीं होने पर भी रोग में कोई कमी नहीं हुई। वहाँ के मकान में अनेक प्रकार की असुविधाएं थीं। डाक्टर भी कहा—धूल और धुओं से भरे कलकत्ते की आबहवा रोग दूर करने में एक बड़ी बाधा है, अगल-बगल की किसी खुली जगह में जाने से अच्छा होगा तब भक्तों ने शहर के निकट काशीपुर में ८० रुपये महवार पर एक उद्यान-भवन भाड़े पर लिया। वह बड़ा उद्यान अनेक प्रकार के फल-फूलों के वृक्षों से भरा था। उसमें एक बड़ा पोखर था जिसमे स्वच्छ जल था। शहर का कोई झमेला नहीं—निर्जन, निस्तब्ध। यहां आकर श्रीरामकृष्ण बहुत प्रसन्न हुए—सारदादेवी ने भी निर्विघ्न सेवा और रहने की सुविधा देखकर राहत की साँस ली।

काशीपुर में उन्हें काफी परिश्रम करना होता। तीन तरह की रसोई—श्रीरामकृष्ण के लिए पथ्य तैयार करना, नरेन्द्र आदि भक्तों के लिए रसोई और अन्य लोगों के लिए रसोई—बनानी पड़ती। किन्तु उन्हें किसी में थकान का बोध नहीं होता। उन्होंने उस समय के अपने मन की अवस्था के सम्बन्ध में कहा है—'उनके सामने जब तक रहती उतनी देर आनन्द से भरपूर रहती। घर में आने पर ही मन में होता, इसके बाद क्या होगा ?'

यहीं एक दिन श्रीरामकृष्ण को अपनी ओर देखते हुए देखकर सारदादेवी ने कहा—'क्या कहिएगा, कहिए न !' उनकी बात सुनकर श्रीरामकृष्ण जैसे किसी राज्य से लौट आये और किंचित् उत्तेजित भाव से बोले 'हाँ जी, तुम कुछ करोगी नहीं, यही सब करोगी ?'' उन्होंने उत्तर दिया—'मैं औरत हूँ, मैं क्या करूँगी, कहिये ?'' श्रीरामकृष्ण ने भावावेश में कहा—'नहीं जी, तुम करोगी, करोगी।' श्री रामकृष्ण को रोग हुआ था मानो संसार में उनके उद्देश्य के प्रचार की सुव्यवस्था करने के लिए। इसी काशीपुर उद्यान में उन्होंने नरेन्द्रनाथ को आदेश दिया था, सम्पूर्ण जगत् में उनकी वाणी का प्रचार करने के लिए; और उन्होंने सारदादेवी के ऊपर भी भार दिया, जो सब भक्त उनके पास आयेंगे उन्हें ईश्वर-लाभ का पथ दिखा देने के लिए।

गले का घाव बढ़ता ही जाता है, बात करने में कष्ट होता है। डाक्टरगण भी बात करने से मना करते हैं। फिर भी श्री रामकृष्ण को अपने रोग के विषय में जैसे कोई होश नहीं, और बात करने में भी कोई विराम नहीं। भक्तों को सर्वदा साधन-भजन में उत्साह प्रदान करते हैं—कभी हँसी-तमाशा, रंग-रस के बीच मत्त हो उठते हैं। सारदा देवी भी उस विमल आनन्द से वंचित नहीं होती हैं।

एक दिन वे एक बड़े कटोरे में दूध लेकर सीढ़ी से ऊपर के घर में जा रही थीं। अकस्मात् माथा घूम जाने के कारण सीढ़ी से गिर गयीं। साथ-साथ झन्-झन् शब्द। भक्तों ने तुरन्त आकर देखा, उनके पाँवों में विषम चोट लगी है। आराम के लिए उन्हें लेकर बिछावन पर सुला दिया। तीन दिनों तक बिछावन पर पड़े रहने के बाद वेदना-ग्रस्त रहने पर भी फिर अपने काम में लग गयीं। इस घटना के सम्बन्ध में उन्होंने कहा है—''एक दिन काशीपुर में ढाई सेर दूध एक कटोरे में लेकर सीढ़ी पर चढ़ते समय माथा घूमने से गिर गयी। दूध तो गया ही, मेरी एँड़ की हड्डी पर्यन्त छिटक गयी। नरेन्द्र और बाबूराम ने आकर पकड़ लिया। बाद में पाँव खूब फूल गया। यह सुनकर उन्होंने बाबूराम से आकर कहा—'इसीसे तो बाबूराम, अब क्या होगा, खाने का क्या उपाय होगा ? कौन खिलायेगा ?' उन दिनों वे मण्ड (भात का लेई जैसा चिकना और गाढ़ा रूप) खाया करते थे। मैं मण्ड तैयार कर उन्हें खिला आती। उन दिनों में नथ पहनती थी। इसीसे बाबूराम को नाक दिखा और हाथ को गोलाकर घूमाकर कहा—'ऐ बाबूराम, ऐसी जो वह है, उसे टोकरी में रखकर माथे पर उठा तू यहाँ ले आ सकता है ?'' उनकी बात सुनकर नरेन और बाबूराम तो हँसते-हँसते आरक्त हो उठे। इस तरह का खेल वे इन सबको लेकर करते थे।''

बंगला सन् १२९३ साल का ३१ श्रावण अर्थात् सन् १७८६ ई० का १६ अगस्त। रात के प्रायः एक बजे का समय। श्री रामकृष्ण ने अपने जीर्ण स्थूल शरीर का त्याग किया। उनके देहत्याग के साथ ही भक्तों और शिष्यों में हाहाकार मच गया। सारदादेवी 'ओरी माँ काली मेरी, कहाँ गयी री' कह कर रोने लगीं। श्रीरामकृष्ण को वे इसी भाव से देखती आयी थीं न !

काशीपुर के श्मशान घाट में उनके देह-संस्कार के बाद सारदा देवी अपने हाथ का बाला खोलने जा रही थीं, किन्तु खोल नहीं सकीं। क्यों, सो उन्होंने स्वयं कहा है—'' मैं बाला खोलने जा रही हूँ, कि उन्होंने धप से आकर हाथ पकड़ लिया। कहा—''मैं क्या मर गया हूँ कि तुम यह स्त्री की वस्तु हाथ से खोलकर फेंक रही हो ?'' वे स्वस्थ शरीर में जिस प्रकार के थे, सारदा देवी ने उन्हें उसी रूप में देखा था। इसी दर्शन के बाद वे काफी शान्त हुईं, हाथ में बाला रहने दिया, पहनने की लाल किनारी वाली साड़ी की किनारी को काफी फाड़कर हटा, फेंक दिया। सारदा देवी ने बाद में भी दो बार हाथ का बाला खोलने की चेष्टा की थी एवं दोनों बार ही श्रीरामकृष्ण ने उनके सामने आविर्भूत होकर उन्हें ऐसा करने से निषेध किया था। इसीसे सारदा देवी बराबर लाल किनारी वाली धोती पहनतीं। हाथ का बाला भी और किसी दिन उन्होंने नहीं खोला।

मनुष्य तो सचमुच मरता नहीं, मात्र एक देह छोड़कर दूसरी देह में जाता है। और श्रीरामकृष्ण के समान

देवमानव के लिए देह त्याग या शरीर ग्रहण करना तो केवल उनकी इच्छा के अधीन का व्यापार था। जो लोग अलौकिक कार्य में विश्वास करना नहीं चाहते, उनके लिए सारदादेवी ने उक्त दर्शन के सम्बन्ध में इस प्रकार कहा है—"आत्मा के अमरत्व में इस प्रकार का विश्वास सब में रहने से संसार के अनेक दुःख, ताप और दुर्गतियाँ दूर होती हैं।" उनकी जीवनी को विवेचन के प्रसंग में विख्यात मनीषी स्वर्गीय रामानन्द चट्टोपाध्याय महाशय ने यह बात लिखी है। उनकी ओर से विचार करने से बात ठीक होने पर भी सारदा देवी को देखने में कोई भूल हुई थी—ऐसा विश्वास करने का कोई कारण नहीं है।

द्वादश अध्याय

(तीथ दर्शन)

श्रीरामकृष्ण का अवलम्बन लेकर अनुरागी भक्तों ने कितने ही दिन बिताये थे। उनके आश्रय में इतने दिनों तक वे सब संसार के सारे दुःख भूल गये थे। वे ही थे उनलोगों के सहाय, सम्बल, आशा, भरोसा। उनके मुख की वाणी सुनकर, उनकी सेवा कर, उनके उपदेश के अनुसार साधन-भजन में लिप्त रहकर कितने आनन्द में उन लोगों ने दिन व्यतीत किये थे। उनके अदर्शन से भक्तगण बड़े व्याकुल हो उठे। घर वार, कलकत्ता शहर और उसके आसपास अब और अच्छा नहीं लगता था। प्राणों की इस ज्वाला को शान्त करने के लिए एक दल ने तय किया—तीर्थ-दर्शन को चला जाय। चला जाय उस प्रेम के वृन्दावन में, जिसका प्रत्येक धूलिकण नन्द-नन्दन के चरणों के स्पर्श से पवित्र हो गया है, जिसके पर्वत, मैदान, वन, नदी, सरोवर सब के साथ भगवान् कृष्णचन्द्र की कितनी ही स्मृतियाँ जुड़ी हुई हैं, भक्तगण जिसके कुंज-कुंज में, यमुना के तट पर आज भी वंशी की ध्वनि सुनते हैं, नाना प्रकार की लीलाएँ देख पाते हैं। चलें उसी शान्तिमय स्थान में, वहाँ साधन-भजन में दिन काटे जायँगे।

१५वें भादव को उन लोगों ने सारदा देवी को लेकर वृन्दावन के उद्देश्य से यात्रा की। रास्ते में देवघर में उतरकर वैद्यनाथ के दर्शनादि से निवृत्त हो वे सब काशीधाम गये। वहाँ त्रिरात्रि वास कर अयोध्या गये। अयोध्या में एक दिन व्यतीत कर सब के सब वृन्दावन की ओर रवाना हुए। वृन्दावन में उनलोगों ने कालीबाबू के कुंज में आश्रय लिया। भक्त बलराम बाबू के रुपयों से यहाँ के विग्रह की सेवा-पूजा का खर्च चलता था। वृन्दावन आने पर सारदा देवी के मन में अतीतकाल की कितनी ही स्मृतियाँ उभरने लगीं, श्रीरामकृष्ण के अदर्शन से उनके शोक का सागर उछलने लगा। कुछ समय उन्होने दिन-रात रोकर काटे। किन्तु, भगवान तो भक्त को बहुत दिनों तक रुलाते नहीं। कुछ-एक दिनों के बाद एक दिन श्रीरामकृष्ण ने रात में उन्हें दर्शन देकर कहा,—'तुम इतना रोती क्यों हो? मैं और गया कहाँ हूँ? इस घर उस घर में भेद तो नहीं है!" इस दर्शन के बाद उनके आचार-व्यवहार और कथा वार्ता के रूप एकबारगी बदल गयी। जैसे वे एक छोटी बालिका हो गयीं। छोटी बालिका की भाँति कभी इस मन्दिर से उस मन्दिर दर्शनकरने निकलतीं, या कभी यमुना के तीर पर काफी दूर चली जातीं। बाद में संगीगण उन्हें ढूँढ़ लाते।

वृन्दावन में अधिकांश समय वे साधन-भजन, ध्यान-जप में बितातीं। किसी-किसी समय ध्यान में इस तरह तन्मय हो जातीं कि उनके मुँह पर मक्खी द्वारा काट कर घाव कर देने पर भी वे जान नहीं पातीं। वृन्दावन असंख्य मन्दिरों से भरा है। उन्होंने अधिकांश मन्दिरों का दर्शन किया था। राधारमण का मन्दिर उन्हें खूब प्रिय था। इस मन्दिर में उन्होंने तीन दिनों तक रो-रोकर प्रार्थना की थी,—'हे ठाकुर, मेरी दोष-दृष्टि मिटा दो जिससे मैं कभी किसी का दोष नहीं देख सकूं।' उनकी यह प्रार्थना सफल हुई थी।

दूसरों का दोष ढूंढ़ने और उसे लेकर आलोचना करने में जैसे मनुष्यों को बड़ा अच्छा लगता है, खासकर हमलोगों के देश की स्त्रियों को। इसी दूसरों का दोष देखने को वे 'दोष-दृष्टि' कहती थीं। वे किसी बात में दूसरों का दोष नहीं देख पाती थीं। उनके समीप दूसरों के मन्द स्वभाव की बात की आलोचना करने पर भी वे

विरक्त हो जातीं। वे कहतीं,—'दोष तो मनुष्य करेगा ही। उसे नहीं देखना चाहिए। उससे अपना ही नुकसान होता है। दोष देखते-देखते बाद में दोष ही देखने लगता है।… ….दोष किसी का मत देखो। दोष देखते-देखते अन्त में दूषित दृष्टि हो जाती है।" अपनी संगियों में किसी में इस दोष-दृष्टि को देखने पर वे स्वयं अपनी इस प्रार्थना का उल्लेख करतीं एवं कहतीं—"पहले मुझे भी लोगों के कितने ही दोष आँखों के सामने आते थे। उसके बाद ठाकुर के समीप रो-रोकर, ठाकुर और दोष नहीं देख पाऊँ, कहकर कितनी प्रार्थना करने पर तब दोष देखना गया है। मनुष्य के हजार उपकार करने पर भी केवल एक दोष करो, तभी मुँह टेढ़ा हो जाता है। लोग केवल दोष ही देखते हैं, गुण देखना चाहिए।'

इस प्रसंग में एक घटना का उल्लेख करता हूँ, यद्यपि वह काफी बाद में घटी थी। सारदा देवी उस समय कलकत्ता के 'उद्बोधन' के भवन में रहती थीं। उनकी नित्य-संगिनी गोलाप-माँ के एक दिन धाई को गाली-गलौज करते-करते घर के ऊपर जाने पर उन्होंने जिज्ञासा की, क्या हुआ है गोलाप ?' गोलाप-माँ ने खूब अभिमान भरे स्वर में उत्तर दिया, 'तुम तो माँ किसी का दोष देखोगी नहीं, तुम्हें कह कर क्या होगा ?' उन्होंने बड़े मधुर भाव से उत्तर दिया,—'दोष देखने के लिए क्या लोगों का अभाव हो गया है गोलाप, जो मेरे नहीं देखने से सृष्टि स्थिर हो जायगी ?' गोलाप-माँ ने कहा—'यह तुम्हारा घर है माँ, तुम्हारे कहने पर वे सब जैसा सुनेंगी, मेरे कहने से क्या कोई सुनना चाहेगी ?' उन्होंने गंभीर भाव से उत्तर दिया,—'यह मेरे बच्चों का घर है। ठाकुर ने उन लोगों को सिर छिपाने के लिए दिया है। अतः तुम शरत् (स्वामी सारदानन्द) को जाकर कहो न !' गोलाप-माँ और कोई उत्तर दिये बिना चुप रह गयीं।

जो सब भक्त वृन्दावन जाते वे सब प्रायः ८४ कोस पैदल चलकर वृन्दावन के चारों ओर घूम आते। इसको कहते हैं व्रजमंडल की परिक्रमा। और भी कम रास्ते की परिक्रमा का विधान है। इस परिक्रमा के फलस्वरूप श्रीकृष्ण और राधारानी की लीलाओं के सारे स्थानों का दर्शन हो जाता है। सारदा देवी ने चार संगी और संगिनियों को लेकर पंचकोशी परिक्रमा की।

वृन्दावन में प्रायः एक वर्ष व्यतीत कर वे सब हरिद्वार गये। बाद में जयपुर, पुष्करतीर्थ और प्रयागतीर्थ का दर्शन कर कलकत्ता लौटे। कलकत्ता में बलराम बाबू के मकान में कुछ दिन व्यतीत कर सारदा देवी लक्ष्मी देवी को साथ लेकर कामारपुकुर गयीं।

बंगला १२८१ साल के अन्तिम भाग में वे फिर एक-बार काशी और वृन्दावन—दर्शन को गयीं तथा वृन्दावन में प्रायः तीन महीने रहीं। (क्रमशः)
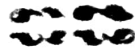
लोग तुम्हारी स्तुति करें या निन्दा, लक्ष्मी तुम्हारे ऊपर कृपावती हों या न हों, तुम्हारा देहान्त आज हो या युग भर बाद, तुम न्याय पथ से कभी भ्रष्ट न हो। कितने ही तूफान पार करने पर मनुष्य शान्ति के राज्य में पहुँचता है, जो जितना बड़ा हुआ है, उसके लिए उतनी ही कठिन परीक्षा रखी गयी है।

—स्वामी विवेकानन्द

माँ सारदा

(आचार्य डा० उमेशचन्द्र मधुकर)

जय हो, माँ सारदे, तुम्हारी सचमुच जीत हुई,
सारी दुनिया ही तुमको सन्तान प्रतीत हुई।
ठाकुर पति परमेश्वर, तुम जन की ईश्वरी बनी,
जग की माता बनी और फिर जगदीश्वरी बनी।
सीधे पंडित ब्राह्मण की तुम कन्या थी सरला,
अभी खेलने के ही दिन थे, बाला थी विमला।
रामकृष्ण तो छुटपन से ही ज्ञानवृद्ध-से थे,
ज्ञानी भक्त और योगी वे परम सिद्ध-से थे।
तुम जैसी बालिका बधू को माता मान लिया,
सच पूछो तो, रामकृष्ण ने तुमको जान लिया।
उन्हें पता हो गया कि तुम थी आदि शक्ति माया,
जिसके बिना ब्रह्म भी कुछ भी कभी न कर पाया।
बिना तुम्हारे रामकृष्ण क्या कुछ भी कर पाते !
प्रेमशक्ति के बिना ब्रह्म-सा निष्क्रिय रह जाते।
जगज्जननि ! तुमसे प्रेरित सब फूले और फले,
सबके मस्तक झुके तुम्हारे पावन चरण तले।
कहाँ वह दक्षिणेश्वर सघन बीहड़,
कहीं बालू, कहीं पत्थर कि कंकड़।
बहुत आनन्द गंगा के किनारे,
जहाँ आकृष्ट होते चाँद - तारे।
जगह वह रासमणि को भा चुकी थी।
बड़ा मंदिर वहाँ बनवा चुकी थी।
बिठायी कालिका की मूर्त्ति उसमें,
प्रखरता दिव्यता की स्फूर्ति उसमें।
पुजारी रामकृष्ण वहाँ पधारे,
कि अब पूजन भजन भी दिव्य न्यारे।
गृहस्थी हाथ में तुमने सँभाली,
सरस दुनिया वहाँ तुमने बसा ली।
वहाँ, माँ सारदे ! तुम रम गयी थी,
पुजारी की पुजारिन जम गयी थी।

सब भोग प्रसाद बनाने पर थी सदा तुम्हारी निगरानी,
रुचि की, पवित्रता की, पौष्टिकता की पद्धति जानी-मानी।
ठाकुर पतिदेव कहाँ खाएँ, कब-कब खाएँ, कितना खाएँ,
सबसे थीं बातें बड़ी कि वे कैसे खाएँ, क्या-क्या खाएँ।
शंकर बमभोले के जैसा व्यवहार तुम्हारे पति का भी,
विज्ञों-अज्ञों से भरा सदा दरबार तुम्हारे पति का भी।
ऐसे में भोजन और शयन उनके क्या नियमित होते थे ?
दर्शन की आयी भीड़ों में क्या लोग संतुलित होते थे ?
फिर भी आदर्श सेविका तुम उनकी चिन्ता में रहती थी,
जैसे हो देर-सबेर स्वयं भी भूख-प्यास तुम सहती थी।
ऐसी कठोर साधना देख पति कुछ नियमित हो जाते थे,
हो स्वस्थ सभी सत्संगों में उपदेशामृत बरसाते थे।
जितने थे शिष्य और जिज्ञासु सभी पर तुम होती कृपालु,
जो नास्तिक या झगड़ालू थे उन पर भी तुम होती दयालु।
तुमने उपदेश नहीं समझे लेकिन उपदेशक को समझा,
शास्त्रों को समझा नहीं किन्तु शास्त्रों के प्रेरक को समझा।
जग में जितने भी होते हैं, यम, नियम, भजन, कीर्तन, दर्शन;
सबका अंतिम उद्देश्य यही बस प्रेमपूर्ण हो यह जीवन।
तुमसे वात्सल्य दुलार यहाँ पाता था हर आने वाला,
माता का सच्चा प्यार लिये जाता था हर जाने वाला।
सब ज्ञान-कर्म, सब उपासना, सब योग पड़े ही रहते हैं,
सच्चे प्रेमी के आगे तो भगवान खड़े ही रहते हैं।
सब कहते, माँ सारदे ! तुम्हारा हृदय प्रेम से भरा रहे,
ऐसी माता जनने को भारत भूमि सदा उर्वरा रहे।
अब देर न माँ सारदे करो,
निज शक्ति और निज भक्ति भरो !
हम सब बच्चे हैं बहुत भ्रान्त,
अपनी भूलों से श्रान्त क्लान्त।
हम तो केवल रो सकते हैं,
पद दलित और हो सकते हैं।
माँ ! तुम आ जाओ एकबार,
हम फिर पा जाएँ वह दुलार।

ज्ञानदा-वरदा-माँ सारदा

—ब्रह्मचारी वरदा चैतन्य
रामकृष्ण मिशन आश्रम, पटना

माँ !

एक अक्षर। एक मंत्र।

माँ! माँ!! माँ!!! इस मंत्र की झंकार से हृदयतंत्री में उठता है एक नूतन सुर। सर्जित होता है एक आवेग, चेतना में जगती है सिहरन! शब्दब्रह्म का कैसा अनुपम प्रकाश। कैसी अपरूप अभिव्यक्ति! माँ का अर्थ ही है शरणागति, माँ का अर्थ ही है परमगति। इसीसे माँ के स्नेहांचल की छाया में आ जुड़ता है उनकी आशान्त-आर्त्त, त्रिताप के दुःख मे कातर स्नेह बुभुक्षु सन्तानों का दल। जागतिक दृष्टि से उन सन्तानों में कोई है पुरुष, कोई है नारी; कोई विद्वान्, कोई मूर्ख; कोई उत्तम, कोई हीन—किन्तु मूल रूप में वे सब की सब हैं उसी एक माँ की सन्तान। इसी से प्रत्येक का दावा उन पर अन्य सब से अधिक है।

संसार की समस्त माताओं के लघु लघु सारे स्नेह, प्रेम, क्षमा, करुणा आदि जैसे एकमेक हो गये हैं इस एक माँ के अगाध हृदय में। श्री माँ सारदा! विश्वमातृत्व की प्रतीक, विश्व-अशान्ति की निर्मूल समाधान। 'माँ' इस मात्र एक मंत्र में ही निहित रहता है विश्व को एक सूत्र में बाँधने का अलौकिक संकेत।

उन्नीसवीं शताब्दी के अस्थिर समाज में, बीसवीं शताब्दी के प्राक्मुहूर्त में, एक नवीन युग के संधिक्षण में, एक साधारण नारी के रूप में जिन्होंने घूँघट की ओट में ही एक पूरे ६७ वर्षों का दीर्घ जीवन व्यतीत कर दिया अंतःपुर के एक निभृत कोने में, घर-गृहस्थी का हाँड़ी-भाड़ा लेकर, उनका स्वरूप कैसा था, वह अब भी हम समझ नहीं पाते हैं। हमलोगों की क्या बिसात! स्वामी प्रेमानन्द, स्वामी शिवानन्द आदि श्रीरामकृष्णदेव के 'दरदी' अंतरंग पार्षद्गण भी नहीं समझ पाये। उन्हें समझ पाना क्या सहज कार्य है? वे जो स्वयं मायास्वरूपिणी हैं! प्रेमानन्द महाराज ने एक पत्र में लिखा है, 'श्री श्री माँ को कौन समझता है? एश्वर्य का लेश मात्र नहीं! बल्कि ठाकुर को विद्या का ऐश्वर्य था भी। किन्तु माँ को! उनमें उनकी विद्या का ऐश्वर्य पर्यन्त लुप्त था। यह कैसी महाशक्ति है? जय माँ! जय माँ! जय शक्तिमयी माँ!" ऐसी ऐश्वर्यहीन नारी की तब क्यों आज विश्व के कोटि-कोटि प्राणी स्वयं जगदम्बा समझकर पूजा करते हैं? और उसी जगदम्बा को क्या आवश्यकता थी ऐसी लालसा से कंगालिनी का रूप धर, घर साफ करने, बर्तन मलने, भक्तों का जूठा साफ करने और राधू जैसी दस पगलियों को लेकर संसार करने की? क्या आवश्यकता थी 'बैकुण्ठ में नारायण की बगल में लक्ष्मी' का पद छोड़ जयरामबाटी जैसे ठेठ देहात में आकर जन्म लेने की?

इन सब प्रश्नों का उत्तर ढूँढ़ने के क्रम में माँ की साधारण जीवन-यात्रा के बीच देखनी होगी असाधारण जीवन की ऐश्वरी महिमा। देखनी होगी उनके सामान्य दैनन्दिन जीवन की गंभीर व्यंजना। श्रीरामकृष्ण ने कहा था, 'उसका नाम है सारदा, वह है सरस्वती।' 'वह है ज्ञानदायिनी, वह क्या जो-सो है? वह है मेरी शक्ति।' माँ आयी थीं संसारी लोगों को योगयुक्त होकर गृहस्थ-धर्म का पालन करने के निमित्त ज्ञान-दान करने, अज्ञानी जीवों को ज्ञान के आलोक से उद्भासित करने। लोगों के कल्याण-साधन के लिए ही ठाकुर (श्रीरामकृष्ण) ने उन्हें लाया था। संसारी जीवों में चैतन्य को जगाने का दायित्व क्या अकेले श्रीरामकृष्ण का था? वह दायित्व माँ सारदा का भी था। श्रीरामकृष्ण ने अपने शरीर की ओर संकेत करते हुए कहा था—'यह और क्या करता है? तुम्हें इससे बहुत अधिक करना होगा।' और भी कहा था, 'देखो, कलकत्ते के लोग कीड़ों की तरह किलबिल कर रहे हैं।

तुम उन लोगों को देखो।' माँ ने ठाकुर द्वारा अर्पित वह दायित्व अपने कंधों पर उठा लिया था—बिना किसी वाद-विवाद के, परम ममतावश। संसारी प्राणी तो उनके अधिक स्नेह के अधिकारी थे। रुग्ण बच्चों के प्रति ही तो माँ की ममता कुछ अधिक होती है!

एक ही जीवन में माँ कितनी भूमिकाओं का अभिनय कर गयीं। आदर्श कन्या, आदर्श स्त्री, आदर्श जननी, आदर्श पुत्रवधू, आदर्श गुरु—इन सभी चरित्रों का उन्होंने सर्वाङ्ग सुन्दर रूप प्रस्तुत किया था। माँ यही दिखाने आयी थीं कि संसार में किस प्रकार ईश्वर को केन्द्र बनाकर अपने दैनिक जीवन के प्रवाह को नियंत्रित करना होगा। माँ सारदा समस्त मातृ जाति कि प्रतिभू (जामिन) होकर आदर्श नारीजीवन का पालन कर गयीं। वे सिखा गयीं, भावी विश्व की नारियों का जीवन किस प्रकार आवर्तित होगा।

संसार में नारी की कितनी तरह की भूमिकाएँ हैं, इन्हें हम अपने नित्य जीवन की यात्रा में सहज ही जानते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि जीवन के कठिन संग्राम में सबसे अधिक नारी जाति को ही युद्ध के सम्मुख उपस्थित होना है। इसीसे लगता है, विधाता ने नारी के चरित्र में असीम धैर्य-स्नेह-करुणा-क्षमा के स्वाभाविक गुण भर दिये हैं। नारी की सुकुमार हृदय वृत्ति के बीच छिपा रहता है प्रचण्ड शक्ति का स्रोत। वह स्वयं आद्याशक्ति का अंश जो है! श्री माँ थीं स्वयं वही आद्याशक्ति। अंश अथवा कला नहीं—पूर्ण। उनके जीवन में स्नेह, क्षमा और पवित्रता का अपूर्व समन्वय था। पवित्रता की प्रतिमूर्त्ति थीं वे। स्वामी अभेदानन्द ने पवित्रता स्वरूपिणी कहकर सारदादेवी की स्तुति की है। किन्तु इन समस्त गुणों को आच्छादित कर झलमला उठता है उनके मातृत्व का स्निग्ध रूप। नारी जाति की श्रेष्ठतम अभिव्यक्ति है, उसके मातृसत्व में। सारदादेवी के जीवन में देखा जाता है उसी मातृसत्व का परिपूर्ण स्फुरण।

हम, आज के आधुनिक मनुष्य, आदर्श समाज के गठन का विचार करते हैं। हम कल्पना करते हैं एक ऐसे समाज की जहाँ वर्ग या जाति-वैषम्य की ग्लानिमय रीति नहीं रहेगी, जहाँ मानवता-बोध की नीति का किंचित् भी उल्लंघन नहीं होगा। हमलोग उसी शान्तिपूर्ण विश्व की खोज में; उसी आदर्श समाज के गठन की परिकल्पना मस्तिष्क में भर कर करते हैं कितनी सारी सभाएँ, विवेचनाएँ, परिसंवाद गोष्ठियाँ या सिम्पोजियम। किन्तु प्रश्न उठता है कि समाज गठन करेगा कौन? समाज किसको लेकर? आदर्श समाज की भित्ति स्थापित होती है नारी और पुरुष की सम्मिलित शक्ति के द्वारा। आदर्श समाज के गठन में नारी और पुरुष का दायित्व विशेष महत्वपूर्ण है। आदर्श समाज के लिए आवश्यकता है आदर्श मनुष्य की। यहाँ प्रश्न होता है कि उस आदर्शवान् मनुष्य की तैयारी कौन करेगा? यहीं नारी जाति की भूमिका सर्वाधिक है। निश्चय ही पुरुष का दायित्व भी होता है, किन्तु मातृ जाति का प्रत्यक्ष दायित्व अत्यधिक है। मनुष्य के जीवन में माता का प्रभाव कितना होता है, यह प्रमाण की अपेक्षा नहीं रखता। हमलोगों के जीवन के प्रायः सारे अंश ही जुड़े होते हैं मातृ जाति के प्रत्यक्ष मिलन से। बाल्यावस्था में जननी और यौवन काल से वृद्धवस्था तक पत्नी अथवा पुत्री तुल्य पुत्रवधू के स्नेह शीतल साहचर्य के द्वारा ही तो जीवन की ऊसर मरुभूमि का अतिक्रम करना संभव होता है। स्नेह-क्षमा, तिरस्कार-पुरस्कार, अभाव-अभियोग, सांत्वना-साहचर्य आदि के द्वारा जीवन प्रभावित होता है। चरित्र-गठन इन्हीं के अनुसार होता है। माताएँ अपने स्वाभाविक दोषों और गुणों को अपनी संतानों में सहज ही संक्रमित करती हैं। अतएव, आदर्श नगर के गठन के लिए आवश्यकता है आदर्श नागरिक तैयार करने की। एवम् उसी गंभीर दायित्व का भार मातृजाति के ऊपर न्यस्त है।

भारतवर्ष में, प्रागैतिहासिक युग से आधुनिक युग तक, उस आदर्श नारी का कभी अभाव नहीं हुआ। वैदिक युग की गार्गी, मदालसा या मैत्रेयी तथा पौराणिक युग की सीता, सावित्री, गांधरी, द्रौपदी आदि महीयसी नारियाँ भारतीय ऋषियों के उर्वर मस्तिष्क की कल्पनामात्र नहीं हैं। इन्हीं सारी महीयसी नारियों की अनुप्रेरणा से लाभान्वित होकर वैदिक युग में भारतीय सभ्यता और संस्कृति

श्रेष्ठता के चूड़ान्त शिखर पर प्रतिष्ठित हुई थी। इसीसे स्वामी विवेकानन्द ने आसमुद्र-हिमालय का भ्रमण कर, विश्व के समस्त देशों की सामाजिक व्यवस्था, रीति-नीति, सभ्यता-संस्कृति आदि को देख-सुन कर, हमलोगों को सतर्क करते हुए कहा है—"हे भारत ! भूलना नहीं कि तुम्हारी नारी जाति का आदर्श सीता, सावित्री और दमयन्ती हैं।"

किन्तु, आधुनिक मनुष्य स्वामीजी की भाव-धारा को इतनी सहजता से मन में धारण करने के लिए तैयार नहीं है। सन्देह जगता है मन में कि वर्तमान आधुनिक सामाजिक परिवेश में उस प्रागैतिहासिक अद्भुत नारी आदर्श का अनुसरण करना कैसे संभव होगा ? इस प्रश्न के चुनौती-स्वरूप ही जैसे माँ का आविर्भाव हुआ। लगता है संसार ने मातृसत्व की ऐसी सार्थक परिपूर्ण अभिव्यक्ति कभी देखी ही नहीं। भगिनी निवेदिता ने आधुनिक सभ्यता की गति-प्रगति के साथ प्राचीन भारतीय ऐतिह्य का पार्थक्य देखकर प्रश्न उठाया था—श्री माँ 'प्राचीन पंथियों की आखिरी प्रतिनिधि हैं अथवा नवीन पंथियों की अग्रदूतिका ?, इस प्रश्न की मीमांसा करेगा आगामी भारत, आगामी विश्व। इस प्रश्न का उत्तर देगा महाकाल। आज हमलोगों के समाज में जिस संकट की अवस्था देखी जाती है उसके द्वारा क्या यही बात नहीं प्रमाणित होती है कि हमलोग विदेशी सभ्यता के साँचे में सर्वाङ्ग सुन्दर समाज का निर्माण नहीं कर सकते हैं ? और उस भाव से समाज-निर्माण का कुफल हमलोग वर्तमान समाज की ओर आँख उठाकर देखने से ही स्पष्ट रूप में अनुभव कर सकते हैं। वैदिक भारतवर्ष ने नारी को दिया है श्रेष्ठता का सम्मान। शक्तिरूपिणी मातृजाति की उपासना कर भारतवर्ष ने प्राप्त की है सीता, सावित्री, मैत्रेयी और मदालसा की भाँति महीयसी नारियाँ। इसी से स्वामी विवेकानन्द को आशा थी कि भारतवर्ष आने वाले युग में पुनः वैसी ही समस्त तेजस्वी नारियों को जन्म देगा जो समान दक्षता के साथ महाप्रज्ञावान ऋषियों के साथ ब्रह्म तत्व का विवेचन करेंगी तथा उसके साथ ही आदर्श संसार की रचना करेंगी। श्री श्री माँ सारदा इसी प्रकार एक आदर्श नारी का जीवन व्यतीत कर गयी हैं—इस भौतिकताग्रस्त, इन्द्रिय परायण, स्वार्थ पूर्ण युग में। स्वामी विवेकानन्द ने हमलोगों की आँखों में उँगली डाल कर दिखा दिया है श्री माँ के परिपूर्ण अनुकरणीय जीवन की ओर। उन्होंने कहा है,—'माँ ठकुरानी क्या वस्तु हैं, समझ नहीं पाता। अभी कोई भी नहीं समझ पाता। काल-क्रम में समझ पायेंगे लोग। शक्ति के बिना संसार का उद्धार नहीं होगा। हमलोगों का देश सबसे अधम क्यों है ? शक्तिहीन क्यों है ? शक्ति के अनादर करने के कारण। माँ ठकुरानी भारत में पुनः उसी महाशक्ति को जगाने आयी हैं। उनका अवलम्बन लेकर सभी नारियाँ गार्गी-मैत्रेयी को उत्पन्न करेंगी।' स्वामी विवेकानन्द ने माँ के जीवन को ही आदर्श रूप में ग्रहण करने की आवश्यकता पर बल दिया था। श्री माँ के जीवन का अवलोकन करने से ही उनके साधारण जीवन के बीच असाधारण ईश्वरीय महिमा की प्रतीति हो सकती है। मानवी होकर भी वे अमानवी थीं। एक ग्राम निवासिनी साधारण नारी में क्षण-क्षण असाधारण देवीत्व की विद्युत-छटा हमलोगों की सामान्य बुद्धि को पल-पल स्तम्भित कर देती है। आश्चर्य से अवाक् होकर हम सोचने लगते हैं—'तुम देवी हो या मानवी !' और दूसरे ही क्षण उनका स्नेहसिक्त मधुर आह्वान जैसे हमलोगों के मातृबुभुक्षु प्राणों में संगीत की भाँति प्रसरित हो उठता है।

श्री रामकृष्ण थे एक भाव-लोक के मनुष्य। पल-पल निर्विकल्प समाधि लगी ही हुई है। भाव और प्रेम के कारण शरीर में उत्पन्न होता है अष्ट सात्विक विकार। जब-तब आध्यात्मिक ऐश्वर्य का स्वतः प्रकाश घटित होता है। भाव की सघनता में हँसते हैं, रोते हैं, नाचते हैं, गाते हैं। दक्षिणेश्वर में लगा रखी है आनन्द की हाट। जमा रखा है भक्तों का आनन्द मेला। दिन-रात मधुर आकर्षण से खिंच कर मधुमक्खियों का दल कितनी ही अनजानी जगहों से आता है। वे तो ईश्वर प्रेम में भरपूर समाधि के आनन्द में मतवाले बने हैं। और भक्तगण उनकी दिव्य संगति के मधुर सान्निध्य-सुख में पूरी तरह डूबे हैं। किन्तु, जो इस आनन्दोन्मत्तता के बीच नहबत की एक छोटी कोठरी में अपने को बन्दी बनाकर जुगा रही हैं आनन्द हाट में

रसिकों के लिए दोनों बेला का भोजन, उनकी ओर कौन देखता है ? दक्षिणेश्वर में उन समस्त भक्तमंडलियों की माँ के द्वारा की जानेवाली नीरव सेवा के दिन क्या भूलने योग्य हैं ? इस प्रकार निरहंकार चित्त से स्वार्थ त्याग करना माँ के द्वारा ही संभव लगता है। श्रीरामकृष्ण का उनके प्रति और उनका ठाकुर के प्रति अन्य लोगों से अधिक अधिकार है—यह दावी माँ ने कभी नहीं की। मानो ठाकुर के अन्य पाँच सेवकों में वे भी एक हों, बस, इतना ही। माँ की यह एकनिष्ठ सेवा केवल मात्र दक्षिणेश्वर में ही नहीं थी, काशीपुर के उद्यान-भवन में या श्यामपुकुर में श्री श्री ठाकुर के अवस्थान काल में भी वे समान निष्ठा से उनकी सेवा अव्याहत रूप में करती रहीं। माँ की यह सेवा केवल अपने पति और आध्यात्मिक गुरु श्रीरामकृष्ण अथवा श्रीरामकृष्ण की भक्तमंडली के प्रति ही सीमाबद्ध नहीं थी, वह फैली थी सभी जीवों के प्रति, हर श्रेणी के मनुष्यों के प्रति। जयराम वाटी से लेकर श्री ठाकुर के देह-त्याग के बाद के समय तक, उनके भक्तों की सेवा का चूड़ान्त निदर्शन हम श्री माँ में पाते हैं। माँ वहाँ जैसे स्वयं दशभुजा का रूप धारण कर सेवा करती हैं दर-दूरान्तर से आयी अपनी स्नेहाकांक्षी संतानों की। उनके लिए माँ अपने हाथों से रसोई पकाती हैं, अनाज कूटती हैं, जूठा साफ करती हैं। अपने प्रिय पुत्रों के पत्तों पर दूध, मछली या अन्य अच्छी वस्तुएँ डालने के लिए माँ जयरामबाटी की गली-गली में आकांक्षित वस्तुओं की तलाश में निकलती हैं। माँ की यह सेवा, यह कर्मशीलता चलती है दिन से रात तक—अनलस, अविराम।

श्रीरामकृष्ण आये थे इसी मातृ-आदर्श का जगत् में प्रचार करने। उनके अलौकिक जीवन के पाद-प्रदीप के नीचे कितने मनुष्यों को आने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था ? वे तो जिन लोगों में कोई सार तत्व नहीं देखते, उनकी भाषा में 'बाँस और बाँस की श्रेणी' के लोगों को —'जाओ बिल्डिंग देखो जी' कह कर दूर भेज देते थे। किन्तु माँ के निकट आने का, स्नेह का स्पर्श-लाभ करने का सौभाग्य अनेकानेक लोगों को हुआ है। वे जो थीं 'सत् वृत्ति वालों की भी माँ और असत् वृत्ति वालों की भी माँ।' ठाकुर ने कहा था न, 'तुम्हें काफी अधिक करना होगा !, माँ को उसी दायित्व का पालन करते देखते हैं। माँ ठाकुर के संक्षिप्त जीवन के मूल आदर्शों को जीवन में रूपान्तरित कर स्थापित कर गयीं भावी विश्व के लिए जीवन्त दृष्टान्त। संसार और आध्यात्मिक साधना का सामंजस्य कर किस प्रकार अविराम कर्म योग के माध्यम से मन प्रशान्त और ईश्वर के चरणों में अर्पित कर रखना होगा—माँ वही दिखा गयीं। उनके अपूर्व संसार की बात पर विचार करने पर रामप्रसाद का यह गीत स्मरण हो आता है—'पागलों का यह हाट-बाजार है, ओ माँ ! पागलों का हाट-बाजार।" एक अद्ध पागल माँ और उसकी अर्द्ध पागल कन्या राधू—ये हुईं माँ के संसार की समस्याएँ। और भी हैं। माँ इन सब को सन्तुष्ट कर भी लोक-परलोक दोनों की ही रक्षा करतीं। उद्बोधन में माँ के घर के इस जटिल परिवेश में भी उनकी नित्य आध्यात्मिक साधना सम्यक् रूप से चलती थी। प्रातः तीन बजे से ही उठकर जप करने बैठतीं। ध्यान में मन मग्न हो जाता। वे अपनी बाहरी चेतना लुप्त पातीं। समाधि के सुख में आच्छन्न ध्यानमग्ना माँ का शरीर-बोध इस प्रकार लुप्त हो जाता है कि एक दिन ध्यान के समाप्त होने पर गंभीर आश्चर्य से निकट की गोलाप-माँ को पुकार कर पूछती हैं—'ऐ गोलप, मेरे हाथ कहाँ हैं, पाँव कहाँ हैं ?' उस दिन देह और देही सम्पूर्ण रूप से पृथक हो गयी थीं।

ठाकुर ने जो कहा था,—'अद्वैतज्ञान को आँचल में बाँधकर जो इच्छा हो सो करो।'—माँ इसी तत्त्व को अपने जीवन में रूपायित कर गयीं। यही हुआ व्यावहारिक जीवन में धर्म का सार्थक रूपायण। स्वामी विवेकानन्द ने इसी व्यावहारिक वेदान्त का प्रचार किया है।

श्री श्री माँ भारतीय नारी आदर्श की एक प्रोज्वल मूर्त्ति थीं। प्राचीन नारी-आदर्श उनके चरित्र में चिन्मय रूप से प्रकटित हुआ था। उनका त्याग, उनका प्रेम, उनकी सेवा, उनकी सहिष्णुता, उनकी पवित्रता को हम-अपने व्यक्तिगत चरित्र में अपनी साध्य के अनुसार प्रति-फलित करने की चेष्टा करेंगे। ऐसे ही भिन्न भिन्न व्यक्तियों को लेकर गठित होगा एक समाज—एक अखण्ड आदर्श समाज। इस समाज में सभी माँ की सन्तान होंगे, सभी समान होंगे। और सांसारिक और आध्यात्मिक जीवन के समन्वय से गठित हो उठेगा एक परिपूर्ण जगत्।

श्री शारदा—स्तवन

— क्षितिकंठ बोधिसत्त्व

ओ माँ भगवति !
भवतारिणि, भयहारिणि !
ज्ञानदायिनि, त्रिलोकपावनि,
अन्नपूर्णे, वर दे !
ओ पतित पावनि, ब्रह्मविद्ये महाविद्ये
चरणों में अमिट अनुराग की
भिक्षा दे, निष्ठा दे !
कैसे करूँ निवेदन,
ओ माँ !
पवित्रता के अमृत-विश्वंभर चरणों में
कल्मष-अवसन्न अंजलि से
अटपटी प्रणतियों का समर्पण !

कैसे पुकारूँ !
क्षरण शील शब्दों,
डूबती हुई ध्वनियों से—
अक्षर-अस्पृष्ट चिदंबरा को,
अर्चना तो दूर, स्मरण-पथ भी' सूना है,
राग-द्वेष पंकिल मन का—
परिच्छिन्न, नीरस, बौद्धिक अहम् का !
कैसे करूँ प्रतीक्षा भी—
शाकंभरी, सर्वप्राणतोषिणी,
लोक-जग-तारिणी विभुता की !

ओ, माँ !
तुम्हारा दिव्य-चिन्मय,
अरूप-रूप, सर्वमंगल विग्रह कैसे उतारूँ,
बुद्धि-विभ्रमित, त्रास-अस्थिर,
नीरस, संकल्प-विलोड़ित
चित्त के कोलाहल में !
ओ नारायणि, महासरस्वती !!
अमित कोटि ज्ञानराशियों में अभिव्यापी,
भेदाभेदमयी एवं उत्तरवर्त्ती,
विज्ञानमयी चिन्मयातीता को
कैसे करूँ कृत्रिम पुष्पार्पण,
ज्ञास-विमूढ़ शब्द-पंखड़ियों का !
ओ पवित्रता की चरण-गंगे,
अग-जग-पावनि, सनातनि;
हिमस्फीता मंदाकिनि !
ओ भवतारिणि ! तापत्रय से तारने—

त्रिपुर तिरोधान करनेवाली,
तू ही दसों महाविद्याएं हो !
शारदा, सरस्वती, वेदमाता गायत्री,
तू ही ब्रह्मविद्या हो !
प्रसन्न हो, आओ माँ !
करुणामयी, त्रयीमयी !!
अवधारो, निहारलो विरल-तरल अहम् की;
चपल-चञ्चल चित्त की
ढेर सारी चूकों, अपराध सहस्रों को !
और देखो माँ, मेरी नीरसता को,
डाल-डाल बैठे हुए त्रास को,
प्रभायी अहम् की यांत्रिकता को !
तू अगर
अपने से—
अपने अभिन्न को
अभी अपना ले,
तो घटित होगा
प्राणों का समर्पण—
मनों का अ-मनीकरण—
बुद्धियों का विवेक वरण—
और उस अहम् का
अभिमान शून्यीकरण,
जिसने मुझे रखा है वंचित-बहिष्कृत
तुम्हारी वरद-चिन्मय उँगलियों के
अमृत-स्पंदी, विभु प्रसाद से :
तुम्हारी स्नेह-करुणा वत्सल,
ममता-वाहित,
अन्तस उन्मीलक संप्रेरण से,
सद्यः भवितव्य रूपांतरण से !
ओ स्फीति-प्रदायिनि ब्राह्मी,
त्रिजगपालिनि, चिन्मय-संपोषिणि वैष्णवी,
त्रिपुरनाशिनि ब्रह्ममयी शांभवी !
तू ही है माँ,
परम वत्सला, पतितपावनी !
अपनाले अकिंचन अभिन्न को !
ओ परमाद्या महाकाली,
तूही अब पाल उठवा ले न !!

क्या ईसा मसीह भारत आये थे ?

हिमांशु शेखर झा

'ईसा' शब्द संस्कृत के 'ईश' शब्द से बना है जिसका अभिप्रेत अर्थ है परमात्मा। इस प्रकार, 'ईसा मसीह पद का अर्थ है 'परमात्मा का संदेशवाहक'। अंग्रेजी भाषा में महात्मा ईसा जीसस क्राइस्ट के नाम से जाने जाते हैं परन्तु पूरे भारतवर्ष में वे ईसामसीह अथवा ईसुपिता या 'ईसु' के नामसे ही विश्रुत हैं। जीसस क्राइस्ट के 'ईसा मसीह' के नाम से ही विख्यात होने का एक कारण उनका भारत में दीर्घकालीन आवास भी हो सकता है।

ईसा मसीह को तैंतीस वर्ष की उम्र में सलीब पर लटकाया गया था। उसके बादके उन के जीवन के संबंध में पाश्चात्य विद्वान मौन हैं। यह लगभग सब लोग मानते हैं कि ईसा का दूसरा आगमन क्रास पर चढ़ाये जाने के बाद हुआ था, परन्तु वे यह नहीं बतलाते कि यह द्वितीय आगमन कहाँ और किस रूप में हुआ था। जहाँ तक पौरस्त्य विद्वानोंका मत है कि इस वे बात पर एकमत हैं कि ईसा का शरीरांत सलीब पर चढ़ाये जाने के बाद नहीं हुआ था। तीसरे दिन वे होश में आ गये और पर्वतीय दर्रों तथा बर्फानी रास्तों को पार करते हुए कश्मीर पहुँच गए और वहीं गड़ेरियों के एक गांव में, जो पहलाम के नामसे विख्यात है, आमरण रहे। काश्मीरी भाषा में 'पहल' शब्द का अर्थ गड़ेरिया और 'गाम' का अर्थ गांव होता है। इस प्रकार 'पहल-गाम' का सीधा अर्थ है- गड़ेरिये का गांव। पौरस्त्य विद्वानों की स्थापना है कि ईसा मसीह ने अपने जीवन का अंतिम भाग भारत के इसी पर्वतीय प्रदेश में एक गड़ेरिये के रूप में बिताया था। कश्मीर में ईसा मसीह के दीर्घकालीन आवास के अनेक प्रमाण मिलते हैं जिस से यह बिल्कुल स्पष्ट हो जाता है कि वे भारत आये थे।

कश्मीर में 'इस मुक्कम' नामका एक गांव है। कहा जाता है कि इस गांव का नामकरण भी महात्मा ईसा के भारत आगमन से संबद्ध है। ईसा मसीह जब कश्मीर की राजधानी श्रीनगर जा रहे थे, उस समय उन्होंने एक गांव में विश्राम किया था। बाद में वही गांव 'इस मुक्कम' के नाम से विख्यात हो गया। 'इस मुक्कम' शब्द की व्युत्पत्ति करने पर भी यह स्पष्ट हो जाता है कि ईसा का मुकाम होने के कारण ही इस गांव का नाम 'इस मुक्कम' रखा गया था।

कश्मीर में ईसा मसीह कई वर्षों तक रहे। वहाँ उन्हें अनेक लोग 'यूसे आसफ' के नाम से जानते थे। श्रीनगर के पास खान्यार नामक स्थान में वह कब्र पायी जाती है जिसमें मृत्यु के बाद उनके शरीर को रखा गया था। 'दस रीपेन्ट आव पैराडाईज' नामक पुस्तक में लेखक ने यह स्वीकार किया है कि ईसा मसीह की मृत्यु कश्मीर में ही हुई थी और उनके शव को श्रीनगर के निकट खान्यार नामक स्थान में विशेष ढंग से तैयार की गयी कब्र में रखा गया था। वह कब्र अभी भी देखी जा सकती है। वहां के लोग भी इस बात को स्वीकार करते हैं कि वह कब्र ईसा मसीह की ही है।

यह तथ्य तो अनेक विद्वान स्वीकार करते हैं कि सलीब पर लटकाये जाने के तीन दिनों के बाद ईसा मसीह पुनरुज्जीवित हो उठे थे। फिर से जी उठने की इसी प्रक्रिया को उनका पुनरागमन या 'द सेकेण्ड कमिंग' कहा जाता है। बात यह हुई कि हत्यारे ने उनके शरीर को सलीब पर लटका कर उसे क्षत-विक्षत करने के बाद उन्हें बिल्कुल मरा हुआ मान लिया और उस समय के प्रचलित रिवाज के अनुसार उनके शव को एक गुफा में

रख दिया। उन्हें यह दृढ़ विश्वास हो गया था कि ईसा मसीह जीवित नहीं हैं, परन्तु गुफे के अन्दर तीन दिनों तक रहने के बाद ही उनकी लुप्त चेतना लौट आयी और वे फिर से चलने-फिरने लायक हो गये। उसके बाद प्राण रक्षार्थ ईसा मसीह ने उस देश का ही सदा के लिए परित्याग किया और अनेक दुर्लघ्यं घाटियों एवं दर्रों को पार करते हुए भारत चले आये और कश्मीर में आकर वहीं रहने लगे।

ईसा मसीह को एक लंबा जीवन प्राप्त हुआ था। इस दीर्घ काल खण्ड में वे सर्वदा मौन रहे जैसा कि अनेक संत महात्मा रहते आये हैं। उन्हे जो दिव्य ज्ञान संसार को देना था वह तो वे सलीब पर लटकाये जाने के पूर्व दे ही चुके थे। अतः उन्हें अपने पुनरागमन के उपरांत फिर से उपदेश देने की आवश्यकता अनुभूत नही हुई।

ईसा के मौन धारण करने का एक प्रमुख कारण उनका अज्ञातवास भी था। जैसे पांडवों ने अज्ञातवास की अवधि में, जो एक वर्ष की थी, अपने को बिलकुल छिपा कर रखा था, उसी प्रकार महात्मा ईसा ने भी अपने शत्रुओं को यह जानने का अवसर नहीं दिया कि वे कहाँ हैं और क्या कर रहे हैं।

ईसा मसीह के भारत-आगमन के संबंध में अब तक अनेक प्रमाण मिल चुके है। भारतके भूतपूर्व प्रधान मन्त्री तथा इतिहासकार श्री जवाहर लाल नेहरूने १२ अप्रैल, १९३२ ई० को अपनी पुत्री श्रीमती इन्दिरा गाँधी के नाम लिखित एक लम्बे पत्र में, जो विश्व-इतिहास की झलक नामक पुस्तक में संगृहीत है,ईसा मसीह के भारत आगमन की संभावना की संपुष्टि की है। उनके अनुसार ईसा मसीह रोमन गवर्नर पोन्टियस पाईलेट के उत्पीड़नों से शाश्वत परित्राण पाने के लिए, सलीब से छुटकारा पाने के बाद, मध्य एशिया में परिभ्रमण करते हुए भारत आ गये तथा कश्मीर और लद्दाख में रहे। उन्होंने कुछ समय तिब्वत में भी व्यतीत किया था।

श्री नेहरू के अनुसार ईसा मसीह के भारत आने का कारण उनकी उत्कट ज्ञान पिपासा थी। उस समय भारत पूरे विश्व में ज्ञान-विज्ञान के लिए प्रसिद्ध था। उस काल खंड में भारत के अनेक विश्वविद्यालयों में, उच्च कोटि की शिक्षा प्रदान की जाती थी। विश्व के कोने-कोने से अनेक ज्ञान-पिपासु विद्यार्थी ज्ञानार्जन के लिए यहाँ आया करते थे। ईसा मसीह भगवान बुद्ध से अत्यन्त प्रभावित थे। वे उनके उपदेशों का भारत आकर अध्ययन करना चाहते थे। बौद्ध-धर्म और ईसाई-धर्मके बीच पाये जाने वाले आश्चर्य जनक साम्य से भी यह धारणा बलवती होती है कि ईसा भारत आये थे और यहाँ आकर उन्होंने भारतीय धर्म विशेष कर बौद्ध धर्म का गहन अध्ययनमनन किया था।

सुविख्यात रूसी पर्यटक निकोलस नैटोविच जो सन् १८९० ई० के लगभग भारत आये थे, ने अपनी लद्दाख यात्रा के वर्णन के क्रम में लिखा है कि ईसा मसीह ने अपने जीवन के अनेक वर्ष भारत में बौद्ध-धर्म का अध्ययन करने में व्यतीत किये थे। उनकी पुस्तक "लाईफ आव सैंट जीसस" में ईसा मसीह के भारत में पदार्पण के सबन्ध में अनेक रोचक तथ्य संग्रहीत हैं जो पढ़ने और विचार करने लायक हैं।

एक दूसरे विद्वान ने जो फ्राँस के रहने वाले है, भी ईसा मसीह के भारत आगमन के बारे में अनेक तथ्यों को "द सर्पेन्ट आव पैराडाइज" नामक पुस्तक मे प्रस्तुत किया है। इस पुस्तक के अनुसार भी ईसा मसीह के भारत आगमन की प्रामाणिकता सिद्ध होती है।

ईसा मसीह भारत आये थे अथवा नहीं—इसके संबन्ध में विद्वानों में मतभेद हो सकता है, लेकिन जो तथ्य अभी उपलब्ध हैं उन्हें पूरी तरह अस्वीकार नहीं किया जा सकता। उनमें सत्यका कुछ न कुछ अंश तो अवश्य है।

—०—